❀ भूमिका ❀

प्रिय सज्जनगण यह 'सत्यसंग्रहोपदेश' नामक छोटी सी पुस्तक आपके सामने उपस्थित है। जिसमें कर्मकाण्ड, उपासना-काण्ड ज्ञानकाण्ड संयुक्त है और पुराणों के वचनों के भाव यथार्थ में रक्खा गया है। विशेष बातें प्रायः शास्त्रों के अंश से लेकर ही लिखी गई हैं। अर्थात् पक्षपात से रहित होकर लिखा गया है, भरसक प्रयत्न किया गया है कि किसी पर कुछ भी आक्षेप न हो। इसलिये सत्यसंग्रह—उपदेश और मनन करने योग्य है। इस पुस्तक में उपदेश के योग्य बातें हैं। जो साधारण परिश्रम से नहीं मिल सकती हैं। विना सत्सङ्ग और महात्माओं की कृपा के इतना ज्ञान प्राप्त करना दुर्लभ है, जितना वाक्य ऐश्वर्य इस पुस्तक में रखा गया है। रोचकता के लिये कथा की रीति से वर्णन किया गया और साथ ही सारी बातें उपदेश पूर्ण हैं ऐसा हमारा विश्वास है। इस समय भारतवर्ष में अनेक मत-मतान्तर चल रहे हैं, जिनके वास्तविक अर्थ न समझने के कारण आज अनर्थ फैल रहा है और सब सम्प्रदायवाले परस्पर लड़ने में समय बीता रहे हैं। इसलिये हमने सब सम्प्रदायवालों (मत-मतान्तर) से वार्त्तालाप किया तो विदित हुआ, प्रायः सबका उद्देश्य एकही परमात्मा की आराधना करना है। परन्तु अज्ञानवश उलटा कार्य कर रहे हैं। अतएव विवेकी पुरुष को उचित है कि किसी विद्वान् ब्राह्मण से किस वर्ण का क्या कर्त्तव्य है पूछ कर अपने अपने वर्ण (जाति) के अनुसार कर्म का अनुष्ठान कर परमात्मा तक पहुँच जाय। जब से मनमाना काम होने लगा तबसे भारतवर्ष की बड़ी

हानि हुई है। धर्म कर्मके नाशका फल आज हमलोग भोग रहे हैं। इसलिये हमने प्राचीन सनातन उपदेश जो ग्रन्थों में रखे गये हैं उनका संग्रह किया है। हमें जहाँ तक विश्वास है कि दिहात के रहनेवाले सज्जनों को अवश्य इस पुस्तक के पढ़ने से लाभ होगा। हम कोई बड़े विद्वान् नहीं, हिन्दी भाषा के ज्ञाता नहीं, हम दिहात के रहनेवाले, और वर्त्तमान हिन्दी के स्वरूप से बिलकुल अपरिचित हैं। इसमें गलतियां अवश्य हो सकती हैं। इसलिये विद्वान् सज्जन हमारी गलतियों पर ध्यान न देकर वाक्य, शब्द-अक्षर मात्रा की भूलों को सुधार लेंगे यही हमारी प्रार्थना है।

[२]

श्रीमान् पण्डित गोपालशास्त्री साहित्याचार्य न्याय काव्यतीर्थ (दर्शनकेशरी) ने हमारे भावों को पसन्द किया है। इसलिये हमें अधिक सन्तोष हुआ और छपाने की ओर रुचि हुई। अतः हम आपके विशेष कृतज्ञ हैं।

इस पुस्तक के छापने के प्रबन्ध में पण्डित दुग्धनाथ पाण्डेय जी से हमें बहुत सहायता मिली है। इसलिये हम आपको हृदय से धन्यवाद देते हैं। उक्तपण्डितजी के प्रबन्ध से हमारे जिले के रहने वाले पण्डित अवधेशप्रसाद द्विवेदी काव्यतीर्थ महोपदेशक (भारत-धर्म महामण्डल काशी) ने हमारे कथनानुसार संशोधन का कार्य सम्पादन किया है। यद्यपि आपकी सलाह विशुद्ध हिन्दी में लिखने की थी। परन्तु हमारे आग्रह वश तथा अधिक व्यय होने के कारण कोई हेर फेर न कर ठीक छपाया है, जैसा कि हम चाहते थे। अतः हम आपको हार्दिक धन्यवाद देते हैं।

विनीत—वामन चतुर्वेदी।

अथ सत्यसंग्रहोपदेश।

३ (नट का प्रवेश)

नट बोला—इष्ट देव का ध्यान करता हुआ नेत्र बन्द कर हाथ जोड़ धन्य है! शुद्ध सच्चिदानन्दस्वरूप आत्मा को जिसकी ये विलक्षण लीला है कि जो वस्तु नहीं है सो प्रतीत होती है और जो है वह प्रतीत नही' होती है अर्थात् जैसे जल में सूर्य्य का जो आभास है वह सूर्य्य से भिन्न नहीं' है क्योंकि तेज का कार्य्य जल है और तेज रूप सूर्य्य है जैसे घटादि जितने मृत्तिका के कार्य्य रूप सब मृत्तिका ही हैं। इसी प्रकार का सूर्य्य रूप जल कारण तेज रूप सूर्य्य ही हैं सूर्य्य से भिन्न नहीं' है और आभास भी सूर्य्य से पृथक् नहीं', इसी भाँति जलरूप अविद्या भी ब्रह्म का केवल विलासमात्र है। वास्तव में अविद्या और जीव ब्रह्म से भिन्न नहीं' है। परन्तु उस आत्मा की लीला से भिन्न प्रतीत होता है और जो है, सो प्रतीत नहीं' होता। जैसे राहु आकाश में सदैव काल ही स्थिर रहता है परन्तु प्रतीत नहीं' होता। फिर उसी राहु का सूर्य्य चन्द्रमा के साथ सम्बन्ध होने अर्थात् ग्रहण पड़ने से प्रतीत होता है कि आकाश में राहु हैं। इसी प्रकार जो कुछ दृश्यादृश्य है वह सब आत्मा ही है आत्मा से भिन्न कुछ भी वस्तु नहीं' हैं। परन्तु आत्मा प्रतीत नहीं होता, जब शुद्ध बुद्धि के

साथ इस आत्मा का सम्बन्ध हो तब प्रतीत होता है कि जो कुछ दृश्यादृश्य है सब आत्मा ही है। इस प्रकार जो वस्तु है सो प्रतीत नहीं होती और जो नहीं है सो प्रतीत होती है। ऐसी विचित्र लीला हैं जिस आत्मा की, तिसको मैं अपना आत्मा स्वरूप जानकर बारम्बार प्रणाम करता हूं।

४ नाटक होना आरम्भ हुआ।

नेत्र खोल पुरुषों की ओर देखकर उच्चस्वर से प्राणप्यारी! (नटी) नटी प्राणपति के वाम भाग में उपस्थित हुई। प्यारी! आ ज परमाह्लाद का समय है कि जो यह नाट्य-शाला सन्यासी विरक्त अवधूत सन्त महंन्त विद्वान् ब्राह्मण और सद्गृहस्थों से सुशोभित हो रही हैं। मैं यह विचार कर रहा हूं कि ऐसे २ महानुभावों की प्रसन्नता योग्य नाटक होना चाहिये—

इतने ही में नट और नटी नाट्य--शाला में प्रवेश करते भये धीरे २ परदा उठने लगा। परदे के भीतर से एक पुरुष दिव्य रूप तेजमान सहजावस्था आनन्दरूप देख पड़े। इतने ही में आकाशवाणी हुई, अनुभव आनन्द लहरी में है।

श्लोक—यद्ब्रह्मा द्वयरूपकं पुनरहो ईशश्च माया तनु सूक्ष्मां सृष्टि कलां विधाय विधिवद्वैराग्य गर्भाख्यकम् ॥ स्थूलं स्थावरजंगमं च रचयद्वैराजरूपात्मकं दृष्टिं व्यष्टिमयीं विलम्ब्य विलसच्चास्तेपि त स्मैं नमः ॥ १ ॥

जो मैं ब्रह्म हूँ अर्थात् स्वजातीय विजातीय सुगत भेद रहित हूं अपने माया के सहित शरीर धारण करने से ईश्वर नाम वाला हूं। स्थूल स्थावर जंगम सृष्टि रचना से विराट् नाम वाला हूं। सूक्ष्म सृष्टि की विधि की रचना करने से हिरण्य गर्भ नाम वाला हूं। भोगों में आशक्त होने से जीव नाम होकर अनेकरूप से प्रगट हुआ हूं। अर्थात् बीसलाख जाति स्थावर,नव लाख जाति जलचर, ग्यारह लाख जाति कीटादिक, दश लाख जाति पक्षी, तीस लाख जाति चतुष्पद, चार लाख जाति मनुष्य इतनी जीव संख्या जानो तूष्णी हुआ।

५ शक्ति महारानी बोली ।

परदे के भीतर से एक शक्ति निकलीं मानो जैसे ब्रह्ममयी प्रगट हुई। उनको देखकर जितने सभासद महाशय थे सबके सब उनके रूप तेजको देखकर चकित होकर विचारने लगे कि यह कौन है? इनसे कुछ पूछना चाहिये। एक जिज्ञासु-पुरुष ने हाथ जोड़कर पूछा कि हे अद्भुत रूप वाली! तूं कौन हो? तुमको हम लोग जानना चाहते हैं तूं जो है सो जनाओ, शक्ति महारानी ने प्रसन्न होकर अपने को प्रगट कराने वाली शब्द बोलने लगीं। चैतन्य से शक्ति प्रगट हूं हमें ही त्रिगुणात्मक अर्थात् सतोगुण रजोगुण तमोगुण जिसके सम-भाव होने से प्रकृति कहते हैं॥ तमोगुण से अहंकार द्वारा शब्दगुण सहित आकाश हुआ॥ १॥ आकाश से स्पर्श गुण सहित वायु हुआ॥ २॥ वायु से रूपगुण सहित तेज

हुआ ॥ ३ ॥ तेज से रसगुण सहित जल हुआ ॥ ४ ॥ जल से गंधगुण सहित पृथ्वी हुई। पांचो गुण पांचो तत्व में जानो। फिर पंचतत्व एकत्र होकर अंतःकरण की उत्पत्ति हुई है जिसकी वृत्ति भेद चार प्रकार की है। संकल्प विकल्पात्मक वृत्ति को मन कहते हैं १ निश्चयात्मक वृत्ति को बुद्धि कहते हैं २ विशेष चिन्तना करने की वृत्ति को चित्त कहते हैं ३ अहंवृत्ति को अहंकार कहते है ४ अर्थात् मन बुद्धि चित्त अहंकार और पांच तत्वों से दश इन्द्रियों की उत्पत्ति हुई १ आकाश तत्व के सत्त्व अंश से श्रोत्रेन्द्रिय, रजोअंश से वाक् इन्द्रिय हुई है २ वायु के सत्त्व अंशसे स्पर्श इन्द्रिय १ रजोअंशसे पाणि इन्द्रियां हुई हैं २ तेज के सत्त्व अंशसे चक्षुरिन्द्रिय १ रजोअंशसे पाद इन्द्रिय हुई है २ जल के सत्त्व अंशसे रसना इन्द्रिय १ रजोअंश से लिंग इन्द्रिय हुई है २ पृथ्वी के सत्त्व अंश से घ्राण इन्द्रिय रजोअंश से गुदा इन्द्रिय भई है, इस प्रकार से दश इन्द्रियां हुई ॥ और पांच तत्व के रजोअंशसे पंचप्राणों की उत्पत्ति हुई है। और नाभि के मध्य में जहां पर जठराग्नि रहकर अन्न को पचाता है तहां पर समान वायु नाभि के सामने रह कर सहायता देता है १ व्यान वायु अन्न का रस लेकर सर्वाङ्ग में पहुंचाता है २ उदान वायु जो कुछ अजीर्ण का विकार है उसको ऊपर फेंकता है ५ अपान वायु अन्न जल का रस निकल जाने पर विकार मल मूत्र को नीचे दबाकर बाहर फेकता है ४ प्राण वायु हृदय में जो कमल स्थान है तहां से जाकर ऊपर से अमृत की

हवा लेकर फिर नीचे आकर रक्षा करता है इसी प्रकार से आता जाता हैं यही पंचप्राण शरीर की सुरक्षा करते हैं ५ ब्रह्म से शक्ति, शक्ति से त्रिगुण अर्थात् प्रकृति, प्रकृति से पांच विषय सहित पांच तत्व पांच तत्व से चार अन्तःकरण दश इन्द्रियां पंचप्राण यही चौबीस २४ मिलकर सूक्ष्म शरीर हुआ, तिसकी चेष्टा कामना पर हुआ और चैतन्य के प्रतिविम्ब पड़कर जीव हुआ। काम कर्म वुद्धि में जो चैतन्य प्रतिबिम्ब जीव कहे विद्वान ही जल नभ तुल्य सविम्ब ब्रह्म से शक्ति ताको अंश जीव और काम्य कर्म में से चेष्टा हटा कर चैतन्य जो शिव हैं तिनमें चेष्टा करते हो जाय शिव ब्रह्माभ्यासी जन जो करे हो ब्रह्मस्वरूप।

६ स्थूल देह।

अस्थि मांस नाड़ी त्वचा रोम पृथ्वी तत्व से हैं ५ शुक्र शोणित मूत्रलार स्वेद जल तत्त्व से है ५ क्षुधा पिपासा आलस्य का निद्रा अग्नितत्त्व से है ५ धावन प्रसारन संकोचन चलन उच्छ्व लन वायु तत्त्व से हैं ५ शिर अवकाश, कंठ अवकाश हृदय अव-काश, उदर अवकाश, कटि अवकाश आकाश तत्व से है ५ यही पचीस२५ प्रकृति है यही स्थूल शरीर है। इसी का जन्म मरण और मोटा दुबला काला गोरा बड़ा छोटा इसी में होता हैं। जन्म मरण शरीर का धर्म्म है। क्षुधा पिपासा प्राण का धर्म्म है। हर्ष शोक मनका धर्म्म है। आत्मा छः वो धर्म्म से पृथक् है।

७ इन्द्रियों पर देवता ।

१ नेत्र से सूर्य्य, २ करण में दिशा, ३ नाशिका में अश्विनी-कुमार, ४ मुख में अग्नि, ५ जिव्हा मैं वरुण, ६ हाथ में इन्द्र, ७ त्वचा में पवन, ८ पाद मैं विष्णु, ९ लिङ्ग में मित्रावरुण, १० गुदा में यमराज, ११ बुद्धि में ब्रह्मा, १२ मन में चन्द्रमा, इतना सुनकर सब सभासद महाशय विचार कर आपस में कहने लगे कि सब शक्ति से हुआ है और सब शक्ति रूप ही हैं शक्ति ब्रह्म का प्रकाश है। प्रकाश ब्रह्मरूप हैं।

८ श्रीनानक गुरु बोले ।

इतने ही में श्रीगुरु शान्ति स्वरुप सहजावस्था में जिनकी श्रद्धा समाधान तितिक्षा मुमूक्षुता आदिक सेनापति और विवेक वैराग्य द्वारपाल है, शम सन्तोष विचार सत्संग यह मंत्री है। वाणी जिनकी वेद समान है ऐसे गुरु महाशय सभा के मध्य में उपस्थित हुए। ऐसे महाशयों का गुरु स्वरूप और समाज देख सब सभासद परस्पर कहने लगे यही गुरु योग्य हैं। इनके दर्शनों से पाप दूर हो जाता है और संशय भी दूर हो जायगा।

गुरु बचन—यह जो संसार रूप नाट्य--शाला है जिसमें नटरूप मन और वासना रूपी नटी मिलकर संकल्प रूप शक्ति से अनेक रूप की रचना रचकर नाट्य (तमाशा) करा रहा है। जिसके कारण बहुतेरे मनुष्य इसमें मोहित होकर चक्कर खा रहे हैं। इसलिये परमात्मा गुरुरूप होकर इस संसार रूप नाट्य--शाला में उप-

स्थित हुआ हूं। जिसको जो कुछ पूछना हो सो पूछो मैं सब कुछ कहूंगा। और जो अनेक रूप होकर उपदेश देता है सब को परमात्मा जानो।

अहा! आज की सभा में कुछ और हो तरह का रूप देख पड़ना है। इस समय संसार में अनेक मनमाना मार्ग चल रहा है और इस मार्ग (पथ) से और मत मतान्तर से और वेद शास्त्र से विरुद्ध हो रहा है। न जाने इस मत-मतान्तर वालों कि कौन दशा होगी और गुरु भी नहीं जानता कि शिष्य काहे वास्ते किया जाता है। केवल शिष्य से पूजा लेना, पैर पूजना कान में कोई देवता का नाम कहकर अटपट कुछ समझा देना और मंत्र का अर्थ प्रयोजन गुण इष्ट की उपासना की विधि न बताकर द्रव्य लेने का लोभ रखना और शिष्य जी को कुछ पता नहीं कि गुरु किस वास्ते किया जाता है। फिर गुरुजी से दुबारा नहीं पूछता यही जानता है कि गुरुमुख हो गये। मेरा कर्म धर्म परलोक सब शुद्ध हो चुका गुरुजी को पूजा देनी चाहिये। जो हो! बड़ी अफसोस (दुःख) की बात है कि गुरुजी और शिष्यजी की कौन दशा होगी कुछ सोचते विचारते नहीं और निश्चिन्त होकर पेट के धन्धे में लगे रहते हैं।

६ सत्संग बोले—

इतनेही में सतसङ्ग दोनों हाथ उठाकर उच्च-स्वर से कहने लगे:—हे सभासदो! यहाँ पर जिन २ जिज्ञासुओं को गुरुजी की शरण में जाने की इच्छा हो उनको इस तरह से गुरुजीकी शरण

में जाना चाहिये कि प्रथम तन का अभिमान छोड़ना, दूसरा मनको गुरुमें अर्पण करना, तीसरा जिसका धन हो उसीका समझना और गुरुजी के संमुख हाथ जोड़कर निज मनोरथ लिये सेवा में उपस्थित होना।

दोहा—वांणी जाकी वेद सम, कीजे ताकी सेव ॥
व्है प्रसन्न जब सेवते तब जानो निज भेव ॥ १ ॥

जितने विषयी पुरुष कुछ धन रखते हैं उस धनको कहते हैं कि मैं भोगता हूँ। देखो धन तो लक्ष्मी रूपिणी विष्णुजी की स्त्री है। श्री विष्णु भगवान् जगत के पिता हैं श्री लक्ष्मीजी जगत की माता हैं। जो पिता से विरुद्ध होकर उनकी आज्ञा नहीं पालन करता है अर्थात् पितारूप श्रीविष्णु जी की आज्ञा जो वेद शास्त्र को नहीं मान कर अधर्म करता है तिसको लक्ष्मीरूपी धन हटकर वह लक्ष्मी माया रूपिणी होकर दुख देती है जो पुत्र पितारूप विष्णु की आज्ञा जो वेद शास्त्र हैं, उनको मान कर भक्ति से पूजा करता है उसको श्री लक्ष्मीरुपिणी माता धनरूप होकर अनेक भांति से सुख भोगाती है और पोषण करती हैं। अहंकार को छोड़ कर भक्ति करना जो सुख का हेतु हैं। और प्रथमतः सत्यासत्य को पहिचानने की आवश्यका है। तब असत्य का त्याग और सत्य का ग्रहण बनेगा। तब ही सत्सङ्ग सिद्ध होगा॥

१० श्रीसरस्वती वचन।

कर्म्म करो कर्म्मकरने से हानि नहीं है। सकाम कर्म्म के फल

सर्वलोकों में विषय सुख मिलता है। निष्काम कर्म्म के फल से अंतः करण की शुद्धि होती है तो वैराग्य द्वारा ज्ञान प्राप्त होता है अतएव कर्म्म कर्तव्य है॥

पुरुष तो ईश्वर के अंश होने से ईश्वर की उपासना द्वारा आत्मा जो ईश्वर है उसको पा सकता है स्त्री तो ईश्वर के अंश है परन्तु प्रकृति माया रूपिणी है। पुरुष कों चाहिये मायारूपिणी स्त्री को त्याग कर ईश्वर की उपासना द्वारा ज्ञान रूप आत्मा को प्राप्त करें। और स्त्रियों के लिये पति की सेवा के सिवाय कोई कर्म कर्तव्य नहीं है। क्योंकि कर्म के फल तो किसी शरीर पाय भोगना ही पड़ेगा फिर भोग निवृत्ति होने पर फिर खाली ही होना पड़ता है। स्त्री तो माया रूपिणी प्रकृति के अंश आपही हैं तो दूसरी किस माया को त्यागेगी। प्रकृति तो ईश्वर के अंश, ईश्वर से निकली है और पुरुष जो ईश्वर के अंश जिनसे प्रकृत व्याही जाती है, उस पुरुष को ईश्वर जान कर उपासना करनी चाहिये। क्योंकि जो जिसमें से निकलता है उसी में उसका विश्राम होता है। स्त्री को चाहिये पतिही को ईश्वर समझ कर अपने तन मन धनको नैवेद्य जान कर अर्पण करे। तन मन बचन से, सेवा—शृंगार से भोजन से इष्ट जान कर प्रसन्न चित्त रक्खे। पर जाने कि मेरा सगुण रूप परमात्मा यही हैं। इन्हीं को राग भोग से प्रसन्न रखने से तो मोक्ष पावेगी। जिस स्त्री का पति नहीं है, मर गया हो तो उसको समझना चाहिये कि मेरे पति जो ईश्वर थे सो तो सगुण रूप को त्याग कर निर्गुण रूप को प्राप्त हुए हैं राग भोग से

सगुण रूप की पूजा होती है इसलिये मेरा भोग्य रूपी शरीर का भोक्ता तो सगुण रूपको तो त्याग कर निर्गुण रूप धारण कर लिया इसलिये भोग रूप शरीर का शृंगार और पुष्टता को छोड़ निर्गुण परमात्मा को भजना चाहिये । जो स्त्री भोग तथा शृंगार को त्याग कर ईश्वर की आराधना करती है वह स्त्री संन्यास पद (मोक्ष) जो जन्म मरण के दुःख से रहित है उसको पा जाती है । जो स्त्री पति के साथ पातिव्रत्य धर्म नहीं निवाहती है केवल भोग विलास की चाहना धारा वर्ताव व्यवहार को रखती है सो नीच पदको पाती है । और पतिव्रत धर्म्म को छोड़कर अन्य धर्म के व्यापार करती है सो जन्म मरण दुःख से कभी नहीं छूटतीं ।

११ सूतजी बोले ।

जब कि कोई महात्मा पंडित अच्छे सज्जनों की संग करता है तब वह जानता है कि कौन कौन कर्म करने से पुण्य होता है । कौन २ कर्म करने से पाप होता है । जो किसी अच्छे का संग करता नहीं तो अच्छे बुरे का फल कैसे मोलूम हो । कदापि नहीं होगा । और ग्रामदेव जो कालीजी वो ब्रह्मस्थान को पूजकर स्वर्ग चाहते हैं सो कैसे होगा । और ग्रामदेव को पूजने से महामारी प्रेतादिक बाहर से नहीं आते ग्रामकी रक्षा होती है । कुलदेवता के पूजन करने से अपने घरमें किसी तरह का विघ्न नहीं होता । यज्ञ विवाहादिक में मंगल कुशल रहता है । और

इष्टदेव जिसको गुरुजी जिन देवताओंके मंत्रका उपदेश देवें उस गुरु जी को पूजन करके जिस देवता का मंत्र हो वही देवता इष्टदेव हैं उन्हीं की उपासना करना उन्हीं के मंत्रका जप अर्थात् स्मरण करते रहना, वारम्वार स्मरण करने से वह देव उस पुरुष के ऊपर हर काम मे सहायक रहते हैं। वारम्वार रक्षा करते हैं अन्त में शरीर-त्याग होने पर उसको वह देव अपने धामको ले जाकर बहुत काल तक अनेक सुख देते हैं। और संकल्प मोताबिक उत्तम जगह पर जन्म होता है।

और जो किसी ने गुरुजी को उपदेश रूपी मंत्र जिस देव का हो उसको न जपने से उस देवके इष्ट न बनाने से गुरु-मुख होने का कुछ फल नहीं होता है। उसको किसी कार्य्य में कोई देव सहायक नहीं होते। वह निरालम्ब होकर अनेक दुःख पानेके भयसे भयभीत बना रहताहै। इसलिये उपासना करना परम कर्तव्य है। जैसे किसी पुरुष को कोई शत्रु दुःख देने के वास्ते पकड़ने को दौड़े और वह पुरुष किसी बड़े की शरण में जाकर मित्रता करे तो उसकी वह जरूर रक्षा करेगा। उस बड़े के भय से उसके शत्रु उसके पास नहीं जा सकता है। इसलिये पापादिक शत्रु के डुवाने से ईश्वर जो बड़ा है उनकी शरण मे जाने से शत्रु पास नहीं जाता। और ईश्वर रक्षा करता है। और कोई कहे कि हम बहुत देवताओं के नाम जानते हैं किसी देव को इष्ट मान लेगें सो नहीं होगा। देखो किसी पुरुष को किसी ग्राम में किसी नाम के पुरुष के पास जाना हो तो बिना पूछे उस ग्राम में उस

पुरुष के पास नहीं जा सकता है। चाहे कैसे ही बुद्धिमान् हो। इसलिये गुरु करना गुरु से उपदेश लेना शास्त्र ने कहा है।

॥ इति ॥

१२ ब्रह्मा वचन

हे सभासद सुनो! मैंने प्रथम कर्मकाण्ड रचा अर्थात् जो दिन वो तिथि पर मुख्य मुख्य देवताओं को और रामकृष्णादिक के जन्म की तिथि पर व्रत निरूपण किया। जिसमें पुरुषों का उद्धार होगा। पुरुष सकाम व्रत करके संसारी सुख भोग कर जन्म मरण से नहीं छुटा तब यज्ञ निरूपण किया। जिसमें अनेक देवताओं का पूजन होने लगा। सब किसी का यज्ञ सकाम करने के कारण फिर संसारी सुख भोगकर जन्म मरण बना रहा, तब तीर्थ निरूपण किया। काशी विन्ध्याचल प्रयाग चित्रकूट अयोध्या मथुरा हरिद्वार, बद्रिकाश्रम केदार गंगोत्तरी यमुनोत्तरी, वैद्यनाथ, जगन्नाथ, सेतुबांधरामेश्वर, श्रीरंग मदुरा, चिदम्बर त्रिपलीबालाजी शिवकाञ्ची, विष्णुकाञ्ची, किष्किन्धा नासीक पंचवटी, द्वारिका, सुदामा पुरी, नर्मदा, ॐकारजी, इसके अलावें सर्व तीर्थों पर स्नान के लिये पुण्यगंगा, पुण्य—कुण्ड, दर्शन के लिये ईश्वर के अनेक नाम रूप, निरूपण कर दान का फल विशेष रखा और सकामी पुरुष कामना के हेतु से तार्थ करके स्वर्ग भोग कर फिर जन्म पा जाता है। तप निरूपण किया अर्थात् रूप नाम मंत्र के साथ जो देव जो नाम के हो उस देव मंत्र के साथ इन्द्रियों को

रोक कर निरहंकार के साथ क्षुधा पिपासा को सह कर देवको प्रसन्न करे तो देव से भक्ति मोक्ष मांगले तो सुखो होगा। और संसारी पुरुष इतना कष्ट सहकर देवको प्रसन्न करके कामना के फल पाय जन्म मरण से नहीं छूटता है।

१३ दानका फल।

तब दान और ब्राह्मण भोजन निरूपण किया। और विधि का भी निरूपण किया। दान की विधिः—पवित्र स्थान जिस जगह पर दान दिया जावे और देनेवाला आप पवित्रशुद्ध चित्त निरहंकार निष्काम मधुर वचन के साथ कहे हम आपको देते हैं, आप ग्रहण करो तब दे देवे इसका फल विशेष होता है। जो ब्राह्मण सन्ध्या गायत्री से शुद्ध रहे धर्म कर्म का साधन करे, संतोषी हो सुपात्र होकर ईश्वर में भक्ति रखे, उसको दान देना चाहिये। जो ब्राह्मण दान लेकर उसमें से दूसरे को कुछ दान दे दे और गायत्री का जप करे, ईश्वर की भक्ति में रहे तो निर्दोषी रहा। जो ब्राह्मण दान लेकर सब खा जाय ईश्वर में भक्ति न रखे, सन्ध्योपासन न करे मूर्ख हो क्रियाहीन होकर दान लेता हैं। सो देनदार होगा। दान देनेवाले को विशेषफल नहीं होता और जैसे किसी पुरुष का किसी देश में कोई वस्तु भेजना हो तो राजा के यहां डाक मुकरर है ठीक ठीक पता रहने पर भेज सकता है। उसी तरह परलोक के कार्य में अपने लिये चाहे पितरों के लिये

विद्वान् ब्राह्मण के द्वारा कर्मकाण्ड कराना तथा दान देना फल-दायक होता है।

मूर्ख ब्राह्मण को दान देने से उतना फल नहीं होता। हानि की और अधिक संभावना रहती है।

ब्राह्मण मूर्ख है गायत्री कर्म धर्म से व ईश्वर से विमुख डाक मुन्सी का काम करता है, उसको दन्ड होता है। ईश्वर की पूजा भक्ति सच्ची हो तो दन्ड नहीं पावेगा।

मूर्ख ब्राह्मण को भोजन कराने से केवल उतने ही फल होता है। जितना वह भोजन करता है और शास्त्रज्ञ ब्राह्मण जो शास्त्र पुराण पढ़ा हो उसको भोजन कराने से सौ गुना फल होता है। और वेद पढ़ने वाला हो चाहे ईश्वर की सच्ची भक्ति करनेवाला हो उसको भोजन कराने से हजार गुना फल होता है। और विना यज्ञोपवीत किये हुये ब्राह्मण को दान देना व भोजन कराना योग्य नहीं हैं। जवकी वेद रीति संस्कार करे और यज्ञोपवीत धारण करे तव ब्राह्मण शुद्ध होकर दान लेने तथा भोजन कराने योग्य होता है।

जो ब्राह्मण वैस्वानर की उपासना करता हो। जिसको भोजन कराने से जो फल होता है सो कहां तक वर्णन करें—अर्थात् ब्रह्माण्ड भर को भोजन करा चुका। द्वापर के अंत में राजा युधिष्ठिर ने राजसूय अश्वमेध यज्ञ किया परन्तु पञ्चजन्य शंख नहीं वजा श्रीकृष्ण जी के उपदेश से श्वपच को भोजन कराया तो पञ्च-जन्य शङ्ख वजा। यह कथा महाभारत यज्ञ पर्व्व में लिखा है।

१४ शिव वचन ।

श्रीगंगाजी है सो सुनो। एक समय में विष्णुजी ने शिवजी के मुख से सामगान सुनकर प्रेम में विह्वल होकर द्रवीभुत हो गये अर्थात् द्रव कर जल हो सिंहासन में रोक गये। तब शिवजी के उपदेश से ब्रह्माजी ने अपने कमण्डल में रख लिया तत् पश्चात् वामनजी विराट्रूप धर ब्रह्मलोकगये तो ब्रह्माने उसीसे उनकाचरन धो लिया तो चरणोदकी हुई" भगीरथ की प्रार्थना से ब्रह्माजी के कमंडल से शिवजी के जटा में रही तो जटाशंकरी भइ जटा से रथ के बीच होकर चलीं तो भागीरथी भई। जह्नुमुनिने देख और हर्षित होकर मुख द्वारा हृदय में रखलिया और भगीरथकी प्रार्थना से जंघा चीर कर बाहर कर दिया तो जान्हवी हुई" आगे सगर वंश को तार कर लोगों को तारने लगी इसलिये गंगाजी विष्णु द्रवी होने से विष्णु रूपही हैं। जो कोई गंगाजी में स्नान करता है माने विष्णुजी के गोद में बैठ कर सर्व सुख को पाता है। इस लिये गंगाजी पाप नाशिनी नाम्नी हैं।

१५ यमराज वचन ।

यमराज जी सभा में आप उपस्थित हुये और देखने लगे इतने में यमकिंकर आकर बोले कि हे महाराज! आपके लोक में दंड देने योग्य कौन कौन पुरुष या स्त्री को दंड देने के लिये जाऊं। इतना सुनकर यमराज जी कहने लगे हे दूत! ब्राह्मण होकर सन्ध्या गायत्री जप पूजा 'धर्म-कर्म को छोड़ कर

अभक्ष्य खाय नीच काम करे अति शूद्र के यहां खाय उसको हमारे पुरी में ले जाव। क्षत्रिय होकर नीच दुखिया को मारे धर्म की रक्षा न करें उसको लेजावो। राजा होकर प्रजाको पुत्रवत न पालन करे, उसको ले जावो। प्रजा होकर राजा की भलाई में नियत न रखे उसको ले जाव। वैश्य होकर गौ सेवा अतिथि सत्कार शिवपूजन न करे उसको ले जाव। शूद्र होकर बड़ों की सेवा न करे बड़ों का तिरस्कार करे तिसको ले जाव। जो साधु होकर धन जमा करे विषयी हो सदा शरीर के हेफाजत में रहे, मान बड़ाई की चाहना में रहे उसको लेजाव। काम, क्रोध मोह लोभ अहंकार रागद्वेष रखता हो दूसरे को बहका कर धोखा दे भ्रष्ट करता हो उसको लेजाव। विवाह करके बिना संतान के चालीस वर्ष के भीतर में स्त्री को छोड़कर मठ बनाता है, साधु होता है उसको लेजाव। परती कोड़कर फूलवारी लगाय साधु का भेष बनाकर पुजाता है उसको ले जाव। जो शूद्र होकर साधु बनता ब्राह्मण क्षत्रिय से दंडवत कराता है खैरात खाता है, दान लेता है उसको ले जाव। जो गांजा भांग आदि बुद्धिविनाशक पदार्थों के सेवन में मग्न है उसको नरक में स्थान दो। जो साधु हो गुरु सेवा छोड़ अभिमान के साथ वेष बनाय पूजाता है उसको ले जाव। माता पिता को दुःख देकर आप स्त्री के साथ रहकर सुख से रहा करे उसको ले जाव। किसी के धन जाति इज्ज़त धोखा से चाहे जबरदस्ती हरण करताहै उसको लेजाव। साधुहोकर ग़रीब को दुःख देता है उसको ले जाव। जो गृहस्थ होकर अतिथि

को अन्न नहीं दे उसको ले जाव। जो साधु ब्राह्मण होकर गांजा कंकड़ अर्थात् धूम्र पान करता हो उसको ले जाव। मांस खाने वाले को ले जाओ हिंसक के हाथ गउ वेचता हो, बछरा के अंड कुटाता हो ब्राह्मण होकर गाडी हांकता हो उसको ले जाव। पुरुष हो या स्त्री हो दूसरे साथ रति करे उसको ले जाव। वृद्धा गौ-ब्राह्मण को दान दे उसको ले जाव। हे दूत यह लोग वेशक नरक में डालने योग्य हैं। इतना कहकर यमराज चुप हो गये।

इतन ही में नट नटी को साथ लेकर नाट्य शाला के दरवाजे पर खड़ा होकर बोला कि, हे नटी देख इस सभा में कैसे कैसे महाशयों ने संसार के हित के लिये कैसा उपदेश रूपी मार्ग देखाया है। वाह वाह देखो तो सही जो इन वाक्यों को धारण करेगा उनको भवरूपी समुद्र से पार होने में क्या सन्देह हैं। इतना कहकर परदा के भीतर नट नटी को साथ ले चला गया।

इति पण्डित वामन चतुर्वेदी कृत—
सत्यसंग्रहोपदेश—प्रथम विश्राम समाप्त।

[फिर परदा उठता है महाशय सब परदा के भीतर से निकलते हैं। फिर नाटक होने लगा।]

१६ वशिष्ठ वचन।

अन्तर कर्म मोक्षार्थी।

आत्मा सत्य नित्य चैतन्य अचल नाश से रहित और जगत् मिथ्या नाशमान है ऐसा जानना इसका नाम विवेक है। भोग से ब्रह्मलोक तक विषय सुख से इच्छा को हटाना और गुरु वेद वाक्य का ग्रहण करना वैराग्य है। मन को विषय से रोकना जिसको शम कहते हैं। विषय से इन्द्रियों को रोकना उसको दम कहते हैं। गुरुवाक्य वेद वाक्य को सत्य मानकर उसमें विश्वास करना उसको श्रद्धा कहते हैं। मनको स्थिर करके निश्चय करले उसको समाधान कहते हैं। ताप शीत क्षुधा तृषा इनकी सहन स्वभावता को तितिक्षा कहते हैं। ब्रह्म जो आत्मा तिसको प्राप्त की इच्छा और बन्धन जन्म मरण तिससे छुटने की इच्छा तिसको मुमुक्षुता कहते हैं। जो मुमुक्षुता आदि को धारण करेगा वह निस्सन्देह जन्म मरण से रहित रहेगा।

१७ श्रीअम्बिका वचन

एक जिज्ञासु पुरुष ने नटशालामें से निकल कर सभा की ओर देख चकित हो विचार करने लगा कि इस संसार रूपी नाटक की कौन रचना किया। कोई कोई कहते हैं कि ब्रह्मा सृष्टि के

कर्ता है सो विचार से सिद्ध नहीं होता। क्योंकि जो ब्रह्माजी को रचता है वह सब किसी को रचता है इतना विचार कर अम्बिका देवी का ध्यान किया। माता अम्बिका देवीजी प्रसन्न होकर कहने लगीं। हम ही प्रकृति माया हैं उत्पत्ति पालन और संहार हमसे ही सिद्ध होता है। जैसे स्त्री और पुरुष के संयोग से संतान उत्पन्न होती है। केवल पुरुष अथवा स्त्री से उत्पन्न नहीं होती। जब दोनों का संयोग होता है तब संतान होती है। केवल एकही से नहीं होती, उसी तरह से हम प्रकृति माया, जब चैतन्य ब्रह्म का आश्रय लेती है तब उत्पन्न करती हैं। जब चैतन्य मे लय होता है तब महा प्रलय होता है। पुनः सृष्टि के आरम्भ में हम प्रकृति रूपिणी शक्ति चैतन्य का आश्रय लेकर सारी सृष्टि को रचती हैं। और सुनो जब ज़ीव स्थूल देहको छोड़ताहै तो सूक्ष्म शरीर जिसको जीव कहतेहै उसी देह सदृश अगुंष्ठप्रमाण का देह जीवके रहनेके लिये मिलता है चाहे उस से स्वर्ग भोग करे चाहे नरक भोगे और जब भोग की निवृत्ति होती है तब पुण्य और पाप का शेष सहित स्वर्ग या नरक से बाहर होकर जन्म का संकल्प करता है उसी क्षण में जो अङ्गुष्ठ प्रमाण जो देह मिला रहा सो लय होकर केवल जीव अणु प्रमाण पुण्य पाप के प्रभाव मोताविक संकल्प द्वारा जिस योनि में जन्म होना है उसी योनि के भक्ष्य जो अन्न है उसी में जीव प्रवेश करता है। कुछ काल के बाद उस जीव के पुरुष के भोजन द्वारा पुरुष के वीर्य्य में होकर स्त्री के गर्भ में रहकर समय पर जन्म लेकर शेष कर्म भोगता है। पुरुष के सर्व वीर्य्य में जीव

नहीं रहता। केवल जिसमें अणु प्रमाण भक्ष्य द्वारा रहता है जब जिस वीर्य्य में जीव प्रवेश करता है तब मैथुन द्वारा माता के गर्भ में जाय उत्पन्न होते हैं। रज सहित शरीर बनता है। उस जीव के संकल्प से पुरुष चाहे स्त्री का देह बनता है सब इन्द्रियों का आप अनुभव करता है धीरे धीरे इन्द्रियां फैलती हैं चौरासी लक्ष योनि की उत्पत्ति इसी क्रम से जानो । इतना कह श्रीअम्बिका भवानी चुव हो गई । और सभा में ज़य ज़य का शब्द होने लगा ॥ इति ॥

१८ विष्णु वचन ।

हे प्रिय भक्तगण संसार कार्य्य के लिये हम पांच देवताओं के नाम रूपसे पृथक पृथक प्रगट होकर पांच काम करने लगे । मंगल हेतु शोकहरण विघ्ननाशन गणेश नाम से प्रगट हुए ? उत्पत्ति पालन पोषण संहारण शक्ति (भगवती) नाम से प्रगट हुए ॥ २ ॥ अन्तर बाहर प्रकाशक आरोग्य हेतु सूर्य्य नाम से प्रगट हुए ॥ ३ ॥ बुद्धिके विकार के नाश के हेतु और दीन पर दया हेतु शिव नाम से प्रगट हुए ॥ ४ ॥ अज्ञान के नाश बो साधु और धर्म के नाशक दुष्ट के वधके हेतु विष्णु नाम से प्रगट हुए ॥ ५ ॥ इसलिये पंचदेव की उपासना कर्तव्य है । इसके अलावे जो जो कार्य्या जिस प्रकार से होता है उसी के मोताविक देह धर कर कार्य्य करता हूं इतना कह कर चुप होगये ।

१६ गुरुशिष्य सम्बाद।

इतनेही में एक जिज्ञासु पुरुष नाट्यशाले से प्रगट होकर चारो तरफ देखकर विचारने लगा मैं कौन हूँ। नाट्यशाला रूप संसार क्या वस्तु है। जो ऐसा विचित्र देखने में आता है और इस नाट्य-शाला का कर्त्ता पुरुष कौन है ? जिसमें सब वर्तमान देख पड़ते हैं अहा ! अब मुझको क्या करना चाहिये फ़िर विचारने लगा विचार कर यही निश्चय किया कि जो इस नाट्यशाला रूपी संसार का कर्त्ता हो जिससे सब कुछ हो रहा है उसी को ढूंढना जरूरी है। क्योंकि जो इस नाट्यशाला में प्रवृत होकर इसको ढूंढे तो इसमें अनेकानेक वस्तु भोगकी दीख पड़ती है इससे मुझको फुरसत नहीं पड़ेगी। इसलिये इसके मालिकको ढूंढना आवश्यक है। ढूंढने वास्ते पुरुष संसार रूपी नाट्यशाला में घूमने लगा। एक पुरुष के गले में कंठी शिरमें चन्दन भुजामें तप्तमुद्रा के चिह्न देखा उससे पूछा कि:—तुमने सबके मालिक को देखा है (उसने कहा मैंने नहीं देखा है पर देखना चाहता हूं। तब आगे बढ़ कर सोचने लगा कि अब किससे पूंछूं कौन बतावेगा इतने ही में एक महात्मा जिनकी वाणी वेदसम शान्ति स्वरूप शम दमादिक भूषण से शोभमान देख पड़े, उनके दर्शन से चित्त प्रसन्न हुआ उनमें श्रद्धावान् हो उनको प्रणाम कर कहा, हे भगवन् ! मुझे चेला बनाइये और चेला होने पर गुरुजी सबके ऊपर जो मालिक हैं जिनकी कृपा से सब कुछ होता है उनको गुरुजी देखा देते हैं इसलिये हमको चेला बना दो हमने एक पुरुष के

गले में कंठी बांधना देखा है हमारे गले में कंठी बांध दो ॥

कंठी जड़ है तू चैतन्य का आश्रय रखो ॥

प्रश्न—बड़ा चन्दन लगावे ?

उ०—चन्दन तो भूषण है ।

प्र०—तप्तछाप लेवे ?

उत्तर—सर्वाङ्ग पर देवता रहते हैं तू पतित होगा ।

प्र०—सिर पर जटा बढ़ावेंगे ।

उ०—जटा बढ़ाने से सिर पर बोझा होगी लोग सब भय मानेंगे तो अहंकार होगा ।

प्र०—लंगोटी पहनेंगे ?

उ०—कोई वस्त्र पहनने से शरीर का परदा रहेगा ।

प्र०—कमंडल रखेंगे ।

उ०—किसी किसिम का जलपात्र रखना चाहिये ।

प्र०—फलाहार करेंगे ?

उ०—फलाहारया अन्नाहारसे शरीरका पालन करना यही लाभहैं।

प्र०—मृगछाला बिछावेंगे ।

उ०—कोई एक आसन चाहिये जिससे शरीर में आराम हो दूसरा लाभ नहीं ।

प्र०—गेरुआ वस्त्र पहनेंगे ।

उ०—शरीर के परदा के लिये वस्त्र चाहिये कोई रंग से कुछ हानि लाभ नहीं ।

प्र०—धूनी तापेंगे ।

उ०—धूनी तापने से तपी होने से अहंकार बढ़कर कर्म निष्फल होगा।

प्र०—गांजा भांग पीयेंगे?

उ०—गांजा भांग पीने से अन्तः करण मलिन होता है बुद्धि मन्द होती है और विचार ठीक नहीं रहता और पैसा, समय, जाति, तीनों का नाश होता है।

प्र०—मठ बनावेगें।

उ०—तुम्हारे पास दो मठ विद्यमान है स्थूल देह के रहने के लिये मिट्टी का है जिसमें अपने परिवार संबंधी के सहित, दूसरा जीवके रहने के लिये स्थूल देही जिसमें इन्द्रिय रूपी परिवार के साथ वर्तमान हो, और तीसरा क्या बनाओगे।

प्र०—हमको हरि कीर्तन बताओ।

उ०—हरिनाम विष्णुजी का है—कीर्तन है कि जगत की उत्पत्ति अनेक रूपका पालन वो नाश वारम्वार होते देखना, इसी का नाम कीर्तन है सो तो विष्णु जी की माया करके प्रसिद्ध होता है अन्य करनेवाला कोई नहीं है जो कीर्तन करेगा।

प्र०—हमको योग बता दीजिये हम अनहद बाजा सुनेंगे और ज्योति का दर्शन करेंगे अमृत पीयेंगे।

उ०—सुनो जिसमें पांच तत्व का शरीर बन कर हाड मांस रुधिर से भरा है और पांच तत्वकी अपंचीकृत से सूक्ष्म शरीर बन कर जिसमें दश इन्द्रिय पांच प्राण, चार अंतः करण की वृत्ति दश इन्द्रियों पर दश देवताओंके रहनेका स्थान दिया गयाहै जिस बुद्धि

में चैतन्य-आत्मा का प्रतिविम्ब पड़कर काम्य कर्म की तरफ बुद्धि चेष्टा कर जीव हो सर्व काम करती है, आत्मा एक देशी रूप वाला नहीं है। जो देह में बैठकर दर्शन देता रहे जिव्हाको उलटकर प्राण के ऊपर रोकने से गरमी होकर मदा से रंग टपकने से जिव्हा पर मीठा लगता है तिसको अमृत कहते हैं और वायु लगता है. शिर के भीतर श्रवण द्वारा शून्याकार होने से शब्द होता है उसीको अनहद शब्द कहते हैं और सूर्य्य की चमक नेत्र में रहने से बाहरी भीतरी प्रकाश होने से ज्योति कहते हैं। यही तांत्रीय योग का प्रभाव है और चैतन्य ब्रह्ममें अभ्यास रखना ही योग है। दूसरा कोई योग नहीं है।

प्र०—हे गुरु हमको मार्ग बता दीजिये।

उ०—मार्ग नाम रास्ता का है सो तीन प्रकार का है। एक तो वाममार्ग यमलोक की सिद्धि के लिये है। दूसरा मार्ग लोक सिद्धि के लिये है। तीसरा मार्ग स्वर्ग भोग या अन्यलोक सिद्धि के लिये है।

प्र०—हे गुरु हमको मार्ग पृथक् पृथक् बताइये।

उ०—वाममार्ग तंत्रशास्त्र की रीति से होता है जिसको शिव जी कालिका योगिनी आदि ने बनाया है। राक्षसी सम्प्रदाय के लिये है। जिसमें कई एक तरह की क्रियायें बताइ गई हैं। जिसमें पंच मकार से पूजा की जाती है। मैथुन मसात मांस मद्य मकार अक्षर का मंत्र है। पूजा की विधि कई एक प्रकारके तंत्र में लिखा है। तुम से कहां तक कहें जिसमें जाति का नियम नहीं है और

पूजा करके श्री भगवती जी का प्रसाद जो मद्यमांस खाता है सो लोक में सिद्धि देखाता हैं और अनेक भय देकर लोक में पूजाता है। राक्षस लोग पहले युग में तंत्र के बल से बड़े २ काम करते थे। अब तो जिह्वा के स्वाद के वशी होकर जाति धर्म्म विचार परलोक नष्ट कर अहंकार का बोझ मनपर रख कर अगति पाता है फिर यमपुरी से बाहर होने पर नीच योनि मिलती है इस आसुरी सम्प्रदाय का यही फल है। द्विजाति के लिये अधिकार नही है। दूसरा मार्ग लोकसिद्धि के लिये कहते हैं और अनेक तरह के मंत्र तंत्र की सिद्धि करके लोगों को देखाना अनेक रूप बनाना अनेक तरह की चालाकी की बार्ता कर लोक में प्रशंसा कराना कुलकी मर्य्यादा रखना अपने घर की अपने देह की, अपने व्यवहार की, अपनी सुविधा की बनावट रखना किसी तरह के उपहास का काम न करना इसी को लोक सिद्धि कहते हैं यह सनातन मर्य्यादा है।

तीसरा स्वर्ग मार्ग की सिद्धि कहते हैं। पाच विषय हैं जिनको पांच अङ्ग से भोगा जाता है अर्थात् कान से गान बाजा प्रिय बोली सुनना, त्वचा से स्पर्शेन्द्रिय आदि मैथुन भोग करना नेत्र से सुन्दर वस्तु देखना, जिह्वा से अनेक वस्तु का स्वाद लेना नाक से अच्छी२ वस्तु महकना यही पंचमी भोग है और शरीर से आरोग्य रहना यह सब काम्य कर्म के फल से होता है सुख भोगने की इच्छा करके दान देना देव पूजन गंगा आदि पुण्यक्षेत्र में स्नान यज्ञ करना तीर्थ व्रत पाठ जप पूजा स्तोत्रकथा पुराण पोर-

पकार और अनेक प्रकार के सकाम कर्म के फल स्वर्ग के साधन हैं।

अब चतुर्थ मार्ग मनका विचार हैं न कहीं आना है न कहीं जाना है मोक्षरूप आत्मा है और निर्वन्ध अजन्मा आरोग्यता निर्मल निर्गिकार अद्वैत अक्रिय शुद्ध सुख स्वरूप अखंडानन्द आत्मा ही है और पांच तत्त्व के अपंचीकृत के सत्त्व अंश से अंतःकरण है उसकी वृत्ति मन बुद्धि की उत्पत्ति होकर मायिक पदार्थ के व्यापार में संकल्प द्वारा जन्म, मरण, पुण्य, पाप, सुख दुःख ग्रहण त्याग यह सब व्यवस्था बुद्धि कीहै और वन्ध मोक्ष अविचार यहभी बुद्धि की है। और सत्कर्म सत्संग द्वारा जब सत्य विचार प्रगट होता है तव वही विचार आत्मरूप पुरुष को पहचान करा कर बुद्धि अनेक बन्धन को पार कर आत्म लोक प्राप्त करती है।

२० शिष्य-प्रश्न गुरु उत्तर ।

हे गुरुजी! इस शरीर में साधु कौन है? जो लोग कहते हैं कि हम साधु हैं सो कहिये ?

उत्तर—न पृथ्वी है, न जल है, न तेज है,न वायु है, न आकाश है, न पानी है, न पाद है, न लिङ्ग है, न गुदा है, न श्रोत्र है,त्वचा है न चक्षु है, न रसना है, न घ्राण है,न प्राण हैं, न अपान हैं, न उदान हैं, न व्यान है, न समान है, न मन है, न बुद्धि है, न चित्त है, न अहंकार हैं न शब्द है न स्पर्श है न रूप है न रस है न रोम है न शुक्र है न शोणित है न मूत्र है न लार है न स्वेद है न धातन है न

प्रसारन है न चलन है न उच्छ्वलन है न क्षुधा है,न पिपासा है न कान्ति हैं न निद्रा है न शिर अवकाश है, न कंठ अवकाश है, न हृदय अवकाश है,न उदर अवकाश है,न कटि अवकाश है,न कारण शरीर है, न सूक्ष्म शरीर है, न स्थूल शरीर है, न शूद्र है न वैश्य है न क्षत्रिय है, न ब्राह्मण हैं, न ब्रह्मचर्य्य है न गार्हस्थ्य है न वान प्रस्थ है, न संन्यास है, न कोई धरणा है, न कोई त्याग है, न कोई विद्या है, न कोई अविद्या है, केवल सात्विक विचार जो है सो साधू है। जिस करके सत्यासत्य का बोध हो और आत्मा कब असाधू रहा कि फिर साधु होगा ? आत्मा तो केवल सनातन सर्वदा एक रूप सर्वव्यापक साधुही है अर्थात् आत्मा सर्वदा शुद्ध है। शिष्य ने जिस वस्तु का प्रश्न किया सो पाकर प्रणाम कर उपराम होगया।

२१ सामवेद बोले।

हे प्रिय सज्जनों तुम वैस्वानर की उपासना करो। अब यथार्थ वैस्वानर के स्वरूप का तुम श्रवण करो। सूर्य्य चक्षु हैं। वायु प्राण है। देह का मध्यअङ्ग आकाश है। समुद्र मूत्रस्थल है। पृथ्वी पाद है। यज्ञ में जो वेदी भूमि है सो उदर है। दर्भ रोम है। गार्हपत्य नाम अग्नि मन है। आहवनीय नाम अग्नि मुख है। जो पुरुष वैस्वानर को अपना आत्मरूप जानता हुआ ध्यान कराता है सो पुरुष सर्वलोकों में तथा भूतों में सर्व अन्न को भक्षण करता हैं। भोजन काल में प्रथम ग्रास को आहुतीरूप ध्यान करता है। प्रथम आहुती को प्राणाय स्वाहा ॥ १ ॥ इस मंत्र को

सूक्ष्म उच्चारण करके अपने मुख में हवन करता इस होम से प्राण तृप्त होता हैं। प्राण के तृप्त होने से चक्षु तृप्त होता है चक्षु तृप्त होनेसे आदित्य तृप्त होताहै। आदित्य के तृप्त होने से स्वर्ग तथा आदित्य को आश्रय करके जो प्राणी हैं सर्व तृप्त होते हैं। दूसरा ग्रास रूप आहुती को व्यानाय स्वाहा ॥ २ ॥ इस मंत्र का उच्चारण कर हवन करने से व्यान तृप्त होता है व्यान के तृप्त से श्रोत्र चन्द्रमा के मध्यवर्ती सर्व प्राणी पूर्व कहे क्रम से तृप्त होते हैं।

॥ २ ॥ तीसरी ग्रासरूपी आहुती को अपानाय स्वाहा ॥ ३ ॥ इस मंत्र से हवन करने से अपान तृप्त होता है ॥ पश्चात् क्रम से वाक अग्नि पृथ्वी तथा अग्नि के आश्रित प्राणी मात्र यह सर्व तृप्त होते हैं ॥ ३ ॥ चतुर्थ ग्रासरूप आहुती समानाय स्वाहा ॥ ४ ॥ इस मन्त्र करि हवन करने से समान तृप्त होता हैं समान की तृप्ति के पश्चात् क्रम से मन प्रजन्य विद्युत पर्जन्य के आश्रित प्राणिमात्र यह सर्व तृप्त होते हैं ॥ ४ ॥ पंचमग्रासरूप आहुति उदानाय स्वाहा ॥ ५ ॥ इस मंत्र को उच्चारण पूर्वक हवन करने से उदान तृप्त होता है। उस उदान के तृप्त के पश्चात् वायु आकाश आश्रित प्राणि मात्र यह सर्व पूर्व कहे क्रम से तृप्त होते हैं ॥ ५ ॥ इस प्रकार वैस्वानरक के उपासक को पुत्र पौत्रादि प्राप्त होता है। गो अश्व हस्ती आदिक पशु प्राप्त होते हैं। अनेक प्रकार के भक्षण करने योग्य अन्न प्राप्त होता है॥ वेद के पठन से उत्पन्न होनेवाला ब्रह्मतेज को प्राप्त होता है॥ जो पुरुष पूर्व कहे अग्निहोत्र को न जान- कर बाह्य अग्निहोत्र को करता है सो पुरुष अंगारो को त्याग कर

भस्म विषै हवन करनेवाले पुरुष जैसा है ॥ वैस्वानर भगवान् के उपासक पुरुष के सर्व कर्म क्षीण होता है ॥ इसके अर्थ को श्रुति दिखाती है ॥ इतना कह कर चुप होगया ॥

२२ ऋगवेद् वचन ।

[ओंम्] अकार मात्रा जाग्रत अवस्था विस्वाभिमानी स्थूल भोग ब्रह्मादेवता वैस्वानर आत्मा वहिप्रज्ञा सात्वगुण ॥१॥ दूसरी उकार मात्रा स्वप्नावस्था तैजसाभिमानी विष्णुदेवता हिरण्य गर्भआत्मा विरल भोग अन्तरप्रज्ञा रजोगुण ॥ २ ॥ तीसरा मकार मात्रा सुषुप्ति अवस्था प्रज्ञाभिमानी रुद्रदेवता प्रकृति आत्मा आनन्दभोग तमोगुणघनप्रज्ञा ॥ ३ ॥ इन तीनों मात्रा का एकत्र होना सो त्रिमात्रिक प्रणवका स्वरूप है ॐयावत इसके अधिष्ठान तुरीया साक्षी सच्चिदानन्द आत्मा का सम्यक बोध होता नहीं,तावत् मुमुक्षु को त्रिमात्रिक प्रणव की उपासना रूप :संप्रज्ञात समाधि अवश्य कर्तव्य है॥ सम्यक् आत्मा भावकी प्राप्ति हो तब उक्त उपासना कर्तव्य नहीं ॥ जो यावत् जाग्रत स्थूल जगत है तावत सर्व सूक्ष्म स्वप्नरूप उकार मात्रा से फूरा है जो स्थूल प्रपंच है सो सूक्ष्म रूप है। सो स्थूल विराट् का अभिमानो ब्रह्मा है। सूक्ष्म हिरण्य गर्भ से फूरा है वही रुप है ॥ अरु जाग्रदाभिमानी विश्व स्वप्नाभिमान तैजस से फूराहै॥ इसलिये सोइ रूप है॥ इस प्रकार समष्टि व्यष्टि स्थूल प्रपंचरूप अकार मात्रा के सूक्ष्म उकार मात्रा के अकार मकारस्वप तीसरी मात्रा में लय करे॥ तहां ऐसा विचारै

कि सूक्ष्म स्वप्न जगत कारण सुषुप्ति से फूरा है इसलिये वही रूप है ॥ स्वप्नाभिमानी तैजस सुषुप्ति अभिमानी प्राज्ञ से फूरा है इसलिये वही रूपहै ॥ अरु सभीलिंग शरीरों का अभिमानी समष्टि हिरण्य गर्भ विष्णु देवता प्रकृत्याभिमानी रुद्र ईश्वर से फूरा है इस लिये भी वही रूप है ॥ इस प्रकार सूक्ष्म जगत उकार मात्रा के जिस विषे अकार मात्रा को लय किया है॥ कारण मकार मात्रामें करे और कारण मकार मात्रा को तुरीया साक्षी परमात्मा में लय करे ॥ ऐसा विचारे कि समस्त कारण शरीर समष्टिता अव्याकृत और समस्त सुषुप्ति प्रज्ञाभिमानी ईश्वर देवता वही सर्व मकार मात्रा रूप कारण सो अर्ध मात्रा रूप परमात्मा सर्वाधिष्ठान आत्मा से फूरा है।

॥ इति ॥

अथपिण्ड ब्रह्माण्ड॥ पिण्डमेव सौम्य ब्रह्माण्डविजानीहि। पिण्डे ब्रह्माण्ड समाप्यते ॥ ८ ॥

अर्थ—अपने को सत्यप्रतिज्ञा निरूपणकरके ब्रह्माण्डका निरूपण करतेहैं ॥ पिण्ड में ब्रह्माण्डको तुम अपने वाह्य मानते हो सो मत मानो पिण्डसे ब्रह्माण्ड लेशमात्र भिन्न नहीं है।

॥८॥ के लोका इतिब्रह्मरन्ध्र दापादतलं लोकाश्चतु र्दशाके सप्तद्वीपा इ-ति सप्तधातवः

अर्थ—स्थूलके ज्ञानसे सूक्ष्मका बोध हुआ है॥ इसलिये अव-यवलोक है ॥ पादकी तली अतल लोक है ॥ पादके उपर वितल

लोकहै ॥ तलके जानुमें सुतल लोकहै जंघामें तलातल लोक—गुह्य देशमें रसातल लोक—कटिदेशमें पाताल लोक—नाभिमें भूर्लोक ऊपर भुवर्लोक हृदय में स्वर्गलोक—कंठमें मर्त्यलोक—मुखमें जन लोक—मस्तक में तपलोक—ब्रह्मरन्ध्र में सत्यलोक है। इस शरीर में सप्तधातु हैं सो सप्तद्वीप हैं अर्थात् अस्थि में जम्बुद्वीप—नाड़ीमें क्रौञ्चद्वीप—त्वचा में शाल्मलिद्वीप—रोममें गोमेदद्वीप नखमें पुष्कर द्वीप हैं ॥ ९ ॥ का ककुभः का वनस्पतयः कानि खण्डानि मेरुपर्वता श्चेति अग्रे पृष्ठ याश्चोपककुभो लोमानि वनस्पतयो रोम कांण्डस्य नवखण्डानि कसेरुका सुमेरु प्राणि कीकसानी पर्वताः ॥ १० ॥ अर्थ कौन दिशायें हैं कौन वनस्पति है कौन पर्वत है। इस शरीर का अग्रभाग पृष्ठ भाग वाम दक्षिण यह चार भाग चार दिशायें हैं। चार कोण चार उपदिशायें है ॥ उर्द्ध अधो भाग लेकर दश दिशायें है ॥ इस शरीर मे रोम वनस्पति है दो नाशिका दो नेत्र दो श्रोत्र एक मुख एक मूल द्वार एक लिङ्ग द्वार यह नव छिद्र नव खण्ड हैं। पृष्ट भाग की मध्य अस्थि सुमेरु पर्वत है अन्य शरीर में अल्प दो अस्थि है सो साधारण पर्वत है ॥१०॥ के सिन्ध व इति श्रोत्राणि सप्त सिन्धवः न तृप्यति श्रवणादिभि र्नदीभिनात्र तिरोहितं किञ्चन ॥ ११ ॥ अर्थ—इस शरीर में समुद्र कौन है ॥ इस देह में श्रोत्रादिक सप्त इन्द्रिय समुद्र है ॥ विषय से समुद्र नहीं तृप्त होते हैं ॥ ११ ॥

को महोदधि रीति च पिण्डो महोदधिर्गभुवाङ्गवः उद्वारा वीचयः पुरुषकारौ रत्नानि च ब्रह्मचर्य्यंसत्यलोकावत्र।

॥ १२ ॥ अर्थ—कौन महोदधि है कौन बड़वानलाग्नि है उदर महोदधि है ॥ मुख सम्बन्धि उदर बोधक है क्षुधा पिपासा निमित्त जठराग्नि बड़वानल है ॥ परलोक साधन पुरुषार्थ रत्न हैं । विषय सुख सिपी कौडी है । ब्रह्मचर्य्या सत्य भाषण समुद्र पार होने का जहाज है ॥ १२ ॥ अथ कौ सूर्य्याचन्द्रमसौ कानि नगराणि का अरण्यानीति चक्षुषी वामदक्षिणे सूर्याचन्द्रमसौ नीमेषोन्मेषो दिवानिशो सुमतयो नगराणि कुमतयो अरण्यानि ॥ १३ ॥ अर्थ सूर्य्या चन्द्रमा कौन है नगर कौन हैं जंगल कौन है । दक्षिण नेत्र सूर्य्य और वाम नेत्र चन्द्रमा है पराया दोष अपने गुण देखना रात्रि है । पर गुण अपने दोष देखना दिन है शास्त्र के उपदेश का ग्रहण करनेवाली बुद्धि है सो सुमति रूप नगर है । विषय भोगाकार बुद्धि कुमति रूप जङ्गल है ॥ १३ ॥ अथ कानि मित्राणि कौ प्रलयमहाप्रलयौ इति, सुकृतदुष्कृतानि जितानि वखानि मित्राणि सुषुप्तं प्रलयो मरणं महाप्रलयः १४ ॥ अर्थ—मित्र और शत्रु कौन है प्रलय और महाप्रलय कौन हैं ज्ञान कर्माधिकारी सुकर्म वेद विहित है सो मित्र है वेद निषिद्ध दुष्कर्म है सो दुःख दायक होने से शत्रु है । अविद्या में लय रूप सुषुप्ति प्रलय है देह से प्राणों का वियोग रूपमरण महाप्रलय हैं ॥ १४ ॥ का धारा किं बीजं को वारिवाहः किंसुस्यकः स्वर्गः को नरकः इति बुद्धि धरानादो वारिवाहः सुकृत दुष्कृतानि विजिविषयः सस्य सुखं स्वर्गो दुःखं नरकः इति ॥ १५ ॥ अर्थ क्षेत्र रुप पृथ्वी कौन है, उसमें बोने योग्य बीज कौन हैं मेघ क्षेत्र में खेती कौन है

स्वर्ग नरक कौन है। शुभाशुभ बुद्धि दो प्रकारकी पृथ्वी है, गुरुका या मूढ़का उपदेश मेघ है। सुकृत को दुःष्कृत कर्म्मों को बीजरूप जान सुख स्वर्ग दुःख नरक है॥ १५॥ सत्यव्रत उपराम तान् सहो वाचाचार्यो यथा कामं न्यपप्रच्छथ सर्वं ह वोवक्ष्यामीति॥ १६॥ अर्थ॥ इत्यादि वेद वाणी है व्रह्माण्ड की एकता श्रवण से पिण्ड में व्रह्माण्ड और व्रह्माण्डमें पिण्ड दृष्टि संपादन करके व्यष्टि दृष्टि को त्याग के उपराम हो गया॥ इतना कह कर चुप हो गया॥

॥ २४ ॥ यजुर्वेद वचन ॥

हे सभामध्यवर्ती जन श्रवण करो। पंचकोश अर्थात् कोशनाम मकान है अर्थात् अन्नमयकोश १ प्राणमय कोश २ मनो-मय—कोश ३ विज्ञानमय—कोश ४ आनन्दमय कोश ५ अन्नरस से उत्पन्न वो पालन वो अन्न रूप पृथ्वी में लय होता है। इस शरीर को अज्ञानी यह मानता है कि मैं ही शरीर और गोर मोटा दुबला वलवान् या निर्वल या रोवदार अपने जन्म मरण मानता है। १ प्राणमय कोश अर्थात् प्राण पाच, कर्म्म इन्द्रिय ५ इन दशों के समूह को प्राणमय कोश कहते हैं। तिसको अज्ञानी पुरुष अपने में क्षुधा पिपासा मानता है। २ मनोमय कोश अर्थात पाच ज्ञानेन्द्रिय एक मन इन्द्रिय के समूह को मनोमय कोश कहते हैं तीन के साथ तदात्म्य भाव कल्पना कर मूढ़ पुरुष अपने में संकल्प विकल्प मानता है। ३ बिज्ञानमय कोश॥ श्रोत्रादि

पाच ज्ञानइन्द्रिय और एक बुद्धि इन ६ वो कोश समूहको विज्ञानमय कोश कहते हैं। तिसके साथ तदात्म्य भाव कल्पना करके मूढ़ पुरुष अपने में निश्चय करना मानता है ॥ ४ ॥ और चारों कोश का जो कारण स्वरुप अज्ञान प्रिय मोद प्रमोद वृत्ति सहित जो है तिसको आनन्दमय कोश कहते हैं तिसके साथ तादात्म्य भाव कल्पना करके मूर्ख पुरुष अपने को सुखी दुःखी मानता है। ५ इस प्रकार जढ़ात्मक अध्यास जिसका निवृति हो गया है जिस काल में पंचकोशों का द्रष्टा रूप आत्मा को द्रढ़ निश्चय करता है तिसका सर्व उपाधि शुद्ध आत्म तत्व प्रकाश होता है ॥ ततः अद्वैत भव्य भावन ब्रह्मका चिन्तन कर इतना कह कर चुप हो गया ॥

॥ २५ ॥ नारदजी के वचन ॥

॥ सप्त भूमिका ज्ञानकी। १ शुभेच्छा भूमिका साधन ॥ विषय में द्वेष राखना और गुरु तीर्थ भगवत की कथा में गति प्रेम युक्त श्रद्धा वढ़ाना पूजा पाठ जप व्रतादि ॥ २ सुबिचारना भूमिका साधन। हम कौन है संसार क्या है ईश्वर कौन है इसको शोधन करे ॥ ३ तनुमानसा भूमि के साधन। तनु जो शरीर के व्यवहार से मनको रोक आत्म प्रति चिन्तन चाहना वारंबार रखे। ४ सत्त्वा पत्ति भूमिका साधन। आत्म प्रति अनुमव अभंग द्रढ़ करना जैसे समुद्र में तरंग उठता तैसे ब्रह्म में जगत उठता बनता फिर लय होता ऐसा निश्चय

करना ॥ असन शक्ति भूमि का साधन ॥ मैं तनु रूपवान् बलवान् आश्रमवान् गुणवान् धनवान् ज्ञानवान् तपस्वी जितने हैं अपर रूप के बोध होने पर सबका अभिमान से रहित सुख रूप होते ।५ ॥ ६ ॥ पदार्थाभिमानी भूमिका साधन । बुद्धि द्वारा जितने संसारी पदार्थ को प्राप्त किया है उसी पदार्थों के भाव से रहित अभाव करदे आत्म पदार्थ पाय के ॥ ६ ॥ ७ ॥ तुरीया भूमि का साधन । भाव अभाव से रहित हम तुम हमारा तुम्हारा कहां जाय कहा न जाय सबसे रहित आनन्द रूप है ॥ ७ ॥ इतना कह कर चुप हो गये । पण्डित वामन चतुर्वेदीय कृत सत्य संग्रहोपदेश का द्वितीय विश्राम समाप्त ।

॥ २६ ॥ काया रामायण ॥

नट और नटी नाटक करने लगे और ज्ञानी पुरुष विचार रूपी नेत्र से देखने लगे अर्थात् व्यष्टि दृष्टि को निरोध करके समष्टि दृष्टि किया ॥ नट और नटी पर्दा के भीतर चले गये और संसार रूप नाटशाला में नाटक होने लगा ॥ एक पंचकोश रूप अयोध्या पुरी शहर मानो ब्रह्माण्ड रूप कोश है ॥ अन्नमयकोश प्राणमयकोश मनोमयकोश, विज्ञानमयकोश, आनन्दमयकोश, अर्थात् पंचकोश रूप ही शरीर रूपी अवध है ॥ तीस अवध में जीव रूप दशरथजी राजा हैं ॥ दशो दिशा अर्थात् दशो इन्द्रियों को जीत कर राज करता है सो राजा दशरथ है ॥ दशरथजी ने निवृति रुपिणी प्रवृति स्त्री से संयोग किया तब ज्ञान स्वरूप रामजी प्रगट हुए । सो राम

कैसे हैं:—रमन्ते योगिने यस्मिन् नित्यानंदे चिदात्मनि । और जब विषय क्षोष रुपिणी प्रवृति केकयी स्त्री से संयोग किया तब वैराग्य रूप भरतजी प्रगट हुये सो भरतजी कैसे हैं, भरन पोषण सन्तुष्ट करने वाले हैं। जब भक्ति रुपिणी प्रवृति स्त्री से संयोग किया तब विवेक रुप लक्ष्मणजी प्रगट हुये ॥ सो लक्ष्मणजी कैसे हैं—आत्मा के सत्य अचल जगत मिथ्या दिखाने वाले हैं। और भक्ति रुपिणी सुमित्रा से उसी क्रम से बिचार रुप शत्रुहनजी प्रगट हुये हैं सो विचार रुप शत्रुहन जी कैसे हैं मानो सत्य और असत्य के पहिचान कराने वाले हैं। जिससे भय लोभ से निवृत हो और राजा के मन्त्री सुकर्म रूप सुमंतजी हुये, और वेद रूप वसिष्ट जी गुरु हैं जग शुद्धि के वास्ते बिश्वास रुप विश्वामित्र जी आकर जीवं रुप राजा दशरथजी से याचना करके ज्ञान स्वरुप राम और विवेक स्वरुप लक्ष्मणजी के अपने धामको ले चले और धाम के पास में प्रथम भ्रान्ति रुपिणी ताडिका मिलकर बोलीः—हे राम अबही तो हम भ्रान्ती रुपिणी ताडीका वर्तमान ही हैं तो कामनाका नाश कैसे हो सकता है।"प्रथम भ्रम होता है तो सिपी में रजत का लोभ और रस्सी में सर्प का भय होता है और भ्रम नहीं होता तो लोभ और भय नहीं होता इतना सुन ज्ञान स्वरूप रामजी ने संसार के असत्य मान कर भ्रम का लय किया अर्थात् मार कर मुनि के यज्ञ के स्थान पर पहुच मुनि के यज्ञ की रक्षा करने लगे कि इतने ही में काम रूप मारिच ने अनेक राक्षसों के साथ लेकर अनेक बिघ्न करने लगा।

इतना देख ज्ञान स्वरुप रामजीने विश्वास रूप विश्वामित्रजी से बोले—हे मुनिजी !आपके जो हृदय में बिष्णु के ध्यान रूपी योग्य जो अनेक तरह की कामना चित्त में रक्खे हो सो निकाल कर फेक दो क्योंकि कामना ही विघ्न है। मुनि ने कामना रुप मारिचको ज्ञान रूप राम के बल से दूर फेक कर निःष्काम रुपी यज्ञ किया। ज्ञान स्वरूप राम जी विवेक स्वरूप लक्ष्मण जी के सहित मुनि विश्वामित्र जी ने संसार रूप जनकपुर में विदेह रूप जनकजी के धाम को चले जहां पर मार्ग में तप रूप गौतमजी की पत्नी क्षमा रूपी अहल्या को सुखी करते जनकपुर में पहुंचे। जहां पर विदेह रूप जनकजी ने खबर पाकर ज्ञान रूप राम वो विवेक रूप लक्ष्मणजी को मुनि सहित आदर पूर्वक रहने को स्थान और उचित सत्कार किया। तत् पश्चात् विदेह रूप जनकजी की कन्या को विवाह हेतु अहंकार रूप धनुष रखा था इस निमित्त जो पुरुष अहंकार रूप धनुष तोड़ेगा उसको शांति रुपिणी सीता से बिवाह किया जायेगा और कितने देश के राजा आप हार हार कर सब वीर थक गये । लेकिन अहंकार ने सभी को दबा दिया किसी से नहीं टूटा और जनकजी के सोच पुरबालियों के दुःख सीता का दोचित्त, मुनि के विषाद और दुष्टों के गर्व श्री ज्ञान स्वरूप रामजी ने धनुष के साथ ही तोड़ डाला अहँकार रूप धनुष टूटते ही शांति रूपिणी सीताजी जयमाल रामजी के गले में पहना कर अति हर्ष के साथ पिता भवन कोस खियों के साथ चली गई। और प्रेम रूप परशुरामजी को बिषय प्रेमों के ताप दूर कर राम प्रेम

कर के सब को आनन्द देते भये। और जनकजी पत्र द्वारा दशरथ जी, पुत्र, गुरु, और समाज सहित मिथिलापुरी को प्राप्त कर अति हर्षित हुये और जनकजी के भ्राता कुशध्वजजी की लड़की से तीनों भ्राताओं का विवाह हुआ अर्थात ज्ञान स्वरूप रामजी वो शांति रूपिणी सीताजी । १ । विवेक रूप लक्ष्मणजी और नम्रता रूपिणी उरमिला जी ॥ २ ॥ वैराग्य रूपी भरतजी वो विरती रूपिणी मांडवी ॥ ३ ॥ बिचार रुप शत्रुघ्न वो समता रूपिणी श्रुतिकीर्ति ॥ ४ ॥ और चारो भाइयों का बिवाह करके पुर.वासियों को आनन्दित करते भाइयों के सहित बिदा हो अवध को आनन्द देते भये ॥ इति श्रीवालकाण्ड समाप्त ।

॥ २७ ॥ अथ अयोध्याकांड ॥

और कुछ काल के बाद जीव रूप दशरथजी ने ज्ञान स्वरूप रामजी के राज्य पदवी देने को नियत किया और केकयी महारानी ने राजा से समय विचार कर कहा प्रथम वैराग्य बिना ज्ञान के शोभा नहीं होती इसलिये ज्ञान स्वरूप रामजी को वन हो और वैराग्य रूप भरतजी को राज्य पदवी दिया जाय। क्योंकि वैराग्य बिना ज्ञानकी शोभा तथा स्वतंत्र राज्य नहीं इसलिये भरतजी को राज्य और रामजी को वन चौदह वर्ष तक इतना सुन कर जीव रूप दशरथजी चिन्ता में परम मूर्च्छित होगये। तत् पश्चात ज्ञान स्वरूप राम शांति रूपिणी सीता और विवेक रूप लक्ष्मण जी को साथ लेकर पिता माता की आज्ञा जान कर पिता माता

गुरु विप्रों को प्रणाम कर अखण्ड रूपरथ पर चढ़ निर्भय रूप वनको चले। आगे ब्रह्म विद्या रूपी श्री गंगाजीके तीरपर जिज्ञासा रूप के वटको पवित्र करते हुये उपराम रूप भरद्वाज महर्षि से मिल कर उनको प्रशंशा युक्त करके इङ्ला पिंगला का लय सुषुम्ना रूप त्रिवेणी में स्नान करते हुये मुनिवर दम रूप बाल्मिकी जी के आश्रम को पावन किया। और सम्पूर्ण ऋषियों को सत्संग रूप अमृत पिलाकर अमर करते हुये और कूटस्थ पद को प्राप्त जो ब्रह्म विद् पुरुष चित्रकूट में निवास करने लगे और कम रूप जयेन्ता को अक्रिय रूप बाण से मान भंग करते फिर अकर्म रूप अत्रि मुनि के आश्रम पर सुशोभित हुये और अत्रि मुनि की स्त्री धृति रूप अनुसूइया जी ने शान्तिरूपिणी सीता को जगदम्बा जान कर अपने वाक्य को सफल करने के निमित्त पतिव्रत धर्म्म का उपदेश किया। और भरतजी पिता को सुरलोक जान पितृकार्य कर गुरु समाज सहित ज्ञान स्वरूप राम से मिल राज्य पद पाय अवध का कार्य करने लगे। इति श्री अवध काण्ड समाप्त। शान्ति शान्ति शान्तिः ॥ २ ॥

॥ २८ ॥ अथ आरण्य कांड ॥

आगे मार्ग में विकर्म रूप विराध को बध कर के महात्माओं को आनन्द देते आपसमरूप सुतिक्ष्ण ब्राह्मणको संतुष्टकर मुनिन में शार्दूल अद्वैत रूप अगस्तजी को इच्छा पूर्वक यति पुरुषके हृदय रूप पंचवटि में निवास किया॥ उसी स्थान पर दुष्टा तृष्णा

रुपी सूर्पनखादि अनेक राक्षसों को नाश कर फिर काम रूप मृगको नाम रूप को वध किया। और सीता का हरण जान कर खोजने को चले। और अज्ञान रुप रावण के दुःखाया धर्म्म रुप जटायू को सुगति दी और प्रीति रुपिणी शबरी की इच्छा को पूर्ण करके गम्भीरता रूप जल में जिस पुरुष का हृदय पूर्ण हो रहा है जिसमें तीस पुरुष के हृदय रुप पंपासरोवर पर निष्काम कर्म्म रुप नारद जी को दर्शन देकर वहां प्राप्त हुये ॥

॥ इति श्री आरण्य काण्ड समाप्त । शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥३॥

॥ २६ ॥ अथ किष्किन्धा कांड ॥

जहां कि लोभ रूप वाली का नाश करके सन्तोष रुप सुग्रीव को राज्य दिया और तितिक्षा रूप तारा को धीरता देकर अक्रोध रूप अंगद को युवराज पद में स्थिर किया। और शुद्ध चित रुप स्फटिक शीला पर निवास करते भये। वहीं से सत्य संग रूप हनुमानजी को और अंगदादि कितने वानरों के साथ शान्ति रुपिणी सीता जी को ढूंढ़नेको भेजा ॥

इति श्री किष्किन्धा काण्ड समाप्त शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥४॥

॥३०॥ अथ सुन्दर कांड ॥

सतो गुण रुप जटायू के द्वारा पता पाकर हनुमान आदिक वानर हर्षित हो सत्संग रूप हनूमानजी ने आशा रुपी समुद्र को लांघ कर शांति रुपिणी सीता से वार्त्ता करके शंका रुपी लंका को ताप देकर लौट ज्ञान स्वरुप राम से मिल समाचार कह चिहित

कर्म रूप विभीषण ने अज्ञान रूप रावण को दुःखाय आकर ज्ञान स्वरूप रामजी से मिला ॥

॥ इति श्री सुन्दर काण्ड समाप्त शान्ति शान्ति शान्तिः ॥ ५ ॥

॥ ३१ ॥ अथ लंका कांड ॥

रामेश्वर रूप गुरु की पूजा कर के आशा रूपी समुद्र में लीला रूप पूल बांध पार जाकर शांति रूपिणी सीता के प्रति शंका रूपी लंका में विवेक रूप लक्ष्मणजी के द्वारा राग रूप मेघनाद से युद्ध कर फिर राग रूप मेघनाद के बाण से विवेक रूप लक्ष्मणजी को मूर्च्छा हुई। और अनुराग रूप सुखेन रामा अनुराग होकर उनके द्वारा सतसंग रूप हनुमानजी ने "तत्त्वमसि" महा वाक्य रूप बुटी देकर मूर्च्छा छोड़ा कर जगाया। फिर विवेक रूप लक्ष्मण जी राग रूप मेघनाद को मार द्वेष रूप अहिरावणको सतसंग रूप महावीर जी ने नष्ट किया। और क्रोध रूप कुंभकरण को ज्ञान स्वरूप रामजी ने मारकर अज्ञान रूप रावण से बहुत युद्ध किया और अज्ञान रूप रावण ने अनेक भांति से संसाररूप सृष्टि सत् निरोपण अर्थात कर्म्मको रचकर संसार और अज्ञान को रचा कर्म विषय स्वर्ग आदिक भोगसत ऐसा शब्द रूप वाण चलाते भये। और ज्ञान स्वरूप रामजी ने निवारण रूप बाण से उसका बाण काट आप शब्द रूपी बाण चलाते भये। देखो तुम्हारा बचन सत्य नहीं एक आत्मा ही सत्य हैं ॥ और जगत मिथ्या है जैसे स्वप्न के व्यवहार सत् भासता है उस काल में फिर जागरत काल में स्वप्न असत्य

देख पड़ता है उसी तरह से जिस पुरुष के आत्मा में जाग्रत होता है अर्थात् अपने स्वरूप का आप बोध होता है जैसे अस्ति भाति प्रिय नाम स्वरूप अर्थात् अस्ति आप भाति निश्चय प्रिय लगना आत्मा प्रति हैं। और नाम रूप जगत माया प्रति है। जो देखने सुनने में आता है सो मिथ्या नाशवान है। इसीलिये किसी कालमें सत्य नहीं है। और देखने में सत्य भासता है। और अज्ञान क्या वस्तु है कुछही नहीं केवल अंधकार ही है जब ज्ञान रूप सूर्य्य उदय हो गया तब अज्ञान रूप अंधकार एक वारही नष्ट हुआ अर्थात ऐसे ऐसे शब्दरूप वाण से अज्ञान रूप रावण को मार जीवों को सुखी किया और मति रूपी मन्दोदरी रोदन करने लगी। ज्ञान स्वरूप रामजी ने विहित कर्म रूप विभीषण को मति रूपी मन्दोदरी के सहित राज पर स्थित कर शांति रूपिणी सीता को और वन्दरों के सहित अवध को आकर सर्व पुर वासियों को आनन्द दिया॥

इति श्री लंकाकाण्ड समाप्त। शान्ति शान्ति शान्ति ॥६॥

॥ ३२ ॥ अथ उत्तर कांड॥

इसके बाद भरतजी सहित आनन्द प्राप्त होकर ज्ञान स्वरूप रामजी को राज्याभिषेक हुआ। अब राज्याभिषेक की शोभा भी निरखिये जिसमय श्री महाराजा ज्ञान स्वरूप श्री रामचन्द्रजी शांति रूपिणी सीताजी के सहित सहजावस्था रूपसिंहासन पर प्रकाशित हुये जिस सिंहासन के ऊपर अटलरूप छत्र शोभामान हो रहा है। और विवेक रूप लक्ष्मणजी हाथमें पंखा लेकर सिंहासन

के पास और वैराग्य रूप भरत, विचार रूप शत्रुघ्न सतसंग रूप हनुमानजी संतोष रूप सुग्रीव अक्रोधरूप अंगद विहित कर्म रूप बिभीषण और बड़े २ योधागण चारो तरफ से खड़े थे। वेद रूप वशिष्ठजी सहित मुनि लोग तिलक देकर ऐसा आनन्द को प्राप्त हुये कि बस चुप ही होना पड़ा।

इति श्री उत्तर काण्ड समाप्त शान्ति शान्ति शान्तिः ॥ ७ ॥

॥ ३३ ॥ जनकजी बोले ॥

यह द्रष्टा जो पुरुष और दृश्य जो जगत उस द्रष्टा दृश्य के मिलाप में जो बुद्धि में निश्चित आनन्द और दृश्य के संयोग अनिष्ठ के बियोग का जो आनन्द चित्त में दृढ़ होता है वह आनन्द आत्म तत्त्व से उदय होता है। स्पन्न रूप जिस आतमा आनन्द से लव उठता है उसकी उपासना करते हैं ॥१॥ द्रष्टा दर्शन और दृश्य को वासना सहित त्याग कर जो दर्शन सो प्रथम प्रकाश रूप जिसके प्रकाश से वह तीनो प्रकाश से उस आत्मा की उपासना करते हैं ॥ २ ॥ जो निराभास निर्मल और अभास रूप जिसमें मनके भावका अभाव द्वितीय कल्पना का अभाव और अद्वैतरूप उसकी उपासना करते हैं जो दोनों के मध्य में अस्ति नास्ति दो के पक्षों से रहित प्रकाश रूप सत्त और सब सूर्यादि काभी प्रकाशक है उसकी उपासना करते हैं ॥ ४ ॥ जो ईश्वर सकार हकार हुआ अर्थात् सकार जिसके आदि में और हकार जिसके अन्त में सो अन्त से रहित आनन्द अनन्त जो शिव परमात्मा सो

अनन्त आत्मा सबों के हृदय में स्थित निरंतर जो अहं रूप हो उच्चारण होता है उसकी उपासना करते हैं ॥ ५ ॥ हृदय में स्थित जो ईश्वर उसको त्याग कर जो और देव के पाने का यत्न करता है मूर्ख है हाथों में से कौस्तुभ मणि को त्याग कर औरों के पाने का यत्न करता है सो मूर्ख है इतनो कह कर चुप हो गये ॥ ६ ॥

॥ ३४ ॥ जगज्जननी दुर्गाजी के बचन ॥

हे पुत्रो ! हम अपने रूप नाम को जानाती हूं । प्रकृति पर अव-शेष करके कृति करने वाली जगत के जो उत्पत्ति करे इस कारण प्रकृति हुई ॥ १ ॥ अज्ञान आत्म ज्ञान से निवृत्ति होता है। अविद्या ब्रह्मविद्या के आगे नहीं रहती । ३ माया जो पदार्थ को न घटता उसको देखा देना अर्थात् अघटघटना पटीसी माया । ४

प्रधान, प्रलय में सर्व जीवों को अपने में समा लेती हैं स्थान देती है । शक्ति ब्रह्म के आश्रय रहती हूं स्वतंत्र नहीं रहती। और अपने ही गुण देखातो है और ब्रह्मको ढक लेती और अनादि हूं इतना कह फिर बोली:—

हे प्यारे सज्जनों ! पुत्र से प्रथम पिता न होगा तो पुत्र को शिक्षा कैसे देगा अतएव संसार से प्रथम वेद जानो। और स्त्री के रज और पुरुष के बीज से स्थूल देह गर्भ में बनकर बाहर होता है इसलिये शुद्ध नहीं माना जाता । इसलिये आठ नव वर्ष के

होने पर वेद विहित रीतिसे शरीर शुद्धि करके यज्ञोपवीत अर्थात् जनेउ करने के लिये शिखा सूत्र का संस्कार किया जाता है। और चार वेद मिलकर एकलाख मन्त्र है। तीस में अस्सी हजार कर्म्म काण्ड हैं और सोलह हजार उपासना काण्ड है, और चार हजार ज्ञान काण्ड है। और वेद का अधिकार केवल तीन ही वर्ण को है और शूद्र का वेद में अधिकार नहीं है।

तिसका यज्ञोपवीत के अधिकार नहीं है और जिस वर्ण में सगाई की व्यवस्था है उस वर्ण को शूद्र जानना चाहिये। इसका प्रमाण कई जगह भी हैं। ब्रह्मसूत्र में लिखा है। और बीस वर्ष का एकपन है अतएव तीन ही पन तक बल शरीर में रहता है। इसलिये अस्सी हजार कर्म्म काण्ड, सोरह हजार उपासना काण्ड दोनों मिलकर छानवे हजार के हेतु छानवे हजार की जगह छानवे चावा के सूत्र का यज्ञोपवीत बनता है और ब्रह्मा विष्णु शिव के साक्षी नाम तीन गाठ बनता है। देव ऋण पितृ-ऋण ऋषिऋण यही तीन प्रबल हैं। क्षमा--दया--शील विचार पवित्रता--उदारता--सम--दम--संतोष--यही नव गुण का जनेऊ बन कर कर्म उपासना सहित पुरुष के कंधे पर सब गुणों सहित रख दिया जाता है। पुरुषों को अधिकार है कि तीन पन तक कर्म्म उपासना करे। बाद चौथे पनमें शिखा सूत्र से कर्म्म उपासना है इसलिये शिखासूत्र सहित कर्म्म उपासना उतारकर चौथे पनमें मोक्षके हेतु अध्यात्मविचार--सत्संग, तत्ववेता महात्माओं द्वारा ज्ञान प्राप्त करे। सन्यास ले। पवित्र यज्ञोपवीत का यह

प्रयोजन है। जो इस रीति से जनेउ नहीं पेहनते सब गुणों सहित कर्म्म उपासना नहींकरते ते। जनेउ पहने चाहे न पहने दोनों तुल्यही है। वेद विहित संस्कार किये विना जे। जनेउ पहनते हैं उनके शरीरको शुद्धि नहीं होती हैं उसको शूद्र ही जानना चाहिये। जो पन्द्रह वर्ष के वाद में जनेउ पहनते हैं, वेद रीति से उनको प्रथम प्रायश्चित करके जनेउ पहनना उचित है। इतना कहकर चुप हे। गये---

३५ बालमीकजी बोले।

एक पुरुष नटशाला में घूमते घुमते सभा के मध्य में आय उपस्थित हुआ जहाँ पर वाल्मिकी जी वैठे थे तहां पर देख हाथ जोड़कर कहने लगा हे महाराज !हमने सत्कर्म्म रूपी द्रव्य कमाने के लिये तीर्थों में बहुत काल उपार्जन के लिये फिरा और द्रव्य क माया लेकिन चोर डाकू और दुष्टों से तवाह हे। गया कभी काम ना धोखा देती हैं—कभी काम सताता है कभी क्रोध के मारे तंग होते कभी लोभ दौड़ाय मारता कभी मोह सताता है कभी अहंकार द्रव्य लुट मारता, कभी राग बांध कर कैद करता कभी द्वेष ताप देकर दुःखी करता कभी अभिमान अंधा करता, कभी तृष्ण चापती कभी शंका सकदम कर मारता कभी चित जारता कभी आशा फांसी लगाती है। हे कृपालु मुझे इन लोगों के मारे ना ते। धन की खबर है ना ते। तन को खबर है ना ते। सतरूप कर्म्म धर्म्म की खबर है मारे मारे फिरते तुम्हारे शरण हूं हमको

दुष्टों से बचाओ। इतना सुन गुरुजी बचनबोले। हे शिष्य मेरे वचन को धारणकरो। प्रथम सत्व्रत करो अर्थात् सत्को आश्रय करोगे तो सत्लोक मोक्ष पावोगे और असत् के आश्रय करोगे तो जन्म मरण पावोगे। और व्यष्टि दृष्टि को त्यागो समष्टि दृष्टि रखो जैसे बाहर में अनेक देखते हो उसको मिथ्या जान सर्व चैतन्य-मय जान एक देखो और बहिरंगकर्म यज्ञादिक के फल का आश्रय छोड़कर अंतरंगकर्म जो विवेक आदि के आश्रय करोगे तो मोक्ष पावोगे और भेद भक्ति छोड़ अभेद भक्ति करो अर्थात् ईश्वर एक देशी स्थूल को माया जानकर अभेद जो सर्व व्यापक चैतन्य अन्तरयामि जान भजो। जिनका नाम राम है अर्थात् रमंते योगिनो यस्मिन् नित्यानंदे चिदात्मनि जिनका रमन प्रकाश करके अंतर बाहर चन्द्रमा सूर्य्या आदि लेकर प्रकाशता है जैसे घटा काश मठाकाश नाम है वास्तव में आकाश है जैसे भूताकाश चिताकास चिदाकास सर्व आकाश ही है जैसे भूताकाश पंचम भूत जो स्थूल देह और चिताकाश जो चित सहित इन्द्रियादि जो सूक्ष्म शरीर सर्व उपाधि मात्र नाशमान है वास्तव में चिताकाश जो चैतन्य आत्मसर्व आत्म ही है उपाधि भेद करके भूताकाश चिताकाश हुआ है। वास्तव में सर्व चिदाकाश ही है। चैतन्य आत्म चिदाकाश सब बस्तु में सर्व व्यापक होनेसे अर्थात् रमण करता रमंते राम ऐसा नामसिद्ध हुआ है। मन सहित इन्द्रियन को अपना आतमा मानते हो सो मत मानो तुम सबसे जुदा आत्म आनन्द रूप राम हो ऐसा अभ्यास कर राम राम

कहा करो तो सब दुःख से छुटोगे और वृति ज्ञान बहुत वस्तुके जानने को कहते हैं और अपने आप रामशब्द के अर्थ विचार के निश्चय अपरोक्ष देखना वही स्वतः ज्ञान है अतएव तुम राममें दृष्टि करो तो राम सुख रूप पावोगे। और जो दृष्टि में आता है सब माया है। इतना सुनकर गुरुजीको चरणमें दंडवत कर गाता हुआ आनन्द लूटने लगा।

३६ फकीरी बचन।

इतनेही में एक सुन्दरी सुकुमारी तेजस्विनी नाटशालामें आकर आनन्द पूर्वक बैठ गई उसको देखकर एकमहात्मा ने पूछा कि हे आनन्द के देनेवाली तुम कौन हो तुम्हारा नाम क्या है तुम्हारे माता पिता कौन हैं, कहां रहती हो तुम्हारा किससे विवाह हुआ है सो कहो हे महात्मा जी मेरा नाम फकीरी है मेरी माता का नाम लीला देवी है ब्रह्म नगरी में निवास हैं अनिर्वचनीय जाति है। पिता मेरा विज्ञान देव हैं। मैं दो बहिन हूं। मेरी बड़ी बहिन अमीरी देवी है जिनका विवाह चिन्ता नगरी के शासन करने वाले धनदेवजी से हुआ है उनका पुत्र जगत् कुमार जी हैं। और हमारा नाम फकीरी देवी हैं हमारा विवाह मनदेवजी निश्चिन्ता वेफिकरी नगरी के राज्य पालन कर्ता से हुआ है मेरा पुत्र विचारदेव जी हुये हैं मेरा निवास स्थान दर्शन मेरा ही दर्शन है। और सन्तो के हृदय मेरे पति शुद्ध विचार पुत्र सहित रहते और ब्रह्मरन्ध्र द्वार में हमारे पिता विज्ञान देव

निवास करते हैं । फक्किरी और वेपरवाही निरपेक्षता मेरा स्वरूप है जिसको मेरा स्वरूप प्राप्त हुआ सोई राजाधिराज है और जो स्वतःही आकर प्राप्त हो उसमें सन्तोष करना ही हमारी गुजरान है । मेरे में कोई जाति का अभिमान नहीं है कोई आश्रम के कोई गुण के कोई विद्या के कोई धारणा के कोई त्याग के अभिमान नहीं है । मैं आला वेपरवाही में मग्न रहता हूं इतना कहकर चुप हो गई ।

३७ सावित्री वचन ।

सावित्री देवी ने ब्रह्मलोक से आकर सभा में देखा जिसमें बड़े २ विद्वान रहे वहां पर बोलीः—हे ब्राह्मणों ! तुम लोग अपने को आप विचारो कि हम कौन हैं क्या करना चाहिये तुम लोगों ने सन्ध्या गायत्री जो सद्गति की जड़ है तिसको छोड़कर अनेक धर्म्म कर्म उपासना करते हो सो फलदायक नहीं होगा । ब्राह्मणों के लिये ब्रह्मगायत्री ही है जिसका धारण ध्यान जप किये विना ब्रह्म पदको नहीं पहुँचोगे । गायत्री का जपनाही ब्रह्म की उपासना है 'और क्षत्रिय लोग वेदविहित यज्ञोपवीत संस्कार नहीं करते इसलिये ब्रह्म गायत्री के अधिकारी नहीं हैं । केवल पुराणों के अधिकारी हैं । गायत्री क्या कहती है अर्थ विचारो ॥ ॐ ॥ जो सविता देवता हमारे कर्म्मों को धर्मादि विषय की बुद्धियों को प्रेरणा करते हैं द्योतमान सर्वान्तर्यामी रूपसे प्रेरक जगत्द्रष्टा परमेश्वर के सत्य रूप होने के कारण

वा जानने योग्य होने के कारण भजनीय और अविद्या एवं उसके कार्यों को भस्म करने वाले स्वयं ज्योति परब्रह्म स्वरुप तेजका हम ध्यान करते हैं। यही अर्थ है। मन्त्र किसी पण्डित से पूछ लेना इतना कह चुप हो गई।

॥ ३८ ॥ शंकरानन्द के वचन ॥

एक फकीर ने फकीरी धारण करते नाटशाला में आकर गाने लगा ॥ आतमज्ञान विचार वन्दे, क्यों मनमोड़े सन्त सभा से। कलियुग काम की चढ़ी सवारी, जिस जीवन की करी है ख्वारी। खड़ग वैराग संभार वन्दे। मोहवली सब से अधि-काई। उसके संग तू करीये लड़ाई। विवेक तमाचा मार बन्दे।२। इन्द्रीय चोर तेरे घर विच बसते शुभ गुण लुटे हैं हंसते हंसते। हो जरा हुंसियार वन्दे।३। देहाभिमान चंडाल ते ता तो होवेगा बढ़भाग॥ आतम ब्रह्म निहार वन्दे ॥ ४ ॥ कहे हैं केशवानन्द स्वामी सर्व घटादी अन्तरयामि तू है जग में सार वन्दे।५। इतना गानकर फकीर बोले।

(सवैया छन्द) जो यह निर्गुण ध्यान नहुतौसगुण ईश करि मनको धाम सगुण उपासन हुनही है तौ करि निष्काम कर्म भजो राम जो निष्काम कर्म हुनही है तौ करिय शुभ कर्म सकाम जो सकाम कर्म हु न होवे तो शठ बार बार मरिजाम। इतना कह चुप हो गया।

॥ ३९ ॥ (याज्ञवल्कजी के वचन)

याज्ञवल्कजी ने नाट्यशाला में आकर देखा कि इस सभा में बड़े बड़े विद्वान् और बड़े बड़े महात्मा सद् गृहस्थ थे, उनलोगों को देख प्रसन्न हो बोले हे प्रिय सज्जनों ! यह जगत है सो फुरणा के देश है मनकर के फुरणा होता है जब संकल्प बढ़ता है तब जगत विस्तार करता है जब संकल्प से निवृत होता है तब जगत निवृत होता है और जगत नाम रुप का विस्तार है और माया रचित है जैसे अस्ति भाति प्रियनाम रूप अर्थात अस्ति आप-भाति निश्चय प्रिय लगना-यह चैतन्य आत्मा के प्रति है। और नाम उसका रूप माया प्रति-नाश मान जगत है। अतएव पिण्ड ब्रह्माण्ड जसा पिण्ड है वैसा ही ब्रह्माण्ड है अतएव पिण्ड रुपी ब्रह्माण्ड में सत-लोकादि जो अवयव हैं जिसमें मस्तक के ऊपर भाग में ब्रह्मरंध्र है। जिस ब्रह्मरंध्र में विज्ञान रूप देवका निवास है जिस स्थान से प्राण वायु घ्राण द्वारा आया जाया करता है। बुद्धि रूपी जो प्रज्ञा विषयरूप पुरूष से विमुख होकर ब्रह्मरंध्र के दरवाजे पर मन के संकल्प विकल्प को रोककर खड़ी है। विज्ञान देवजी ब्रह्मरंध्र से आवाज देते हैं इसलिये कि तेरा पति विज्ञानदेवजो हमही हैं अन्य विषयादिक तेरा पति नहीं है । इसलिये श्वास द्वारा सोऽहं सोऽहं शब्द उच्चारण होता रहता है । और बुद्धि रूपी प्रज्ञा सोऽहं शब्द को ध्यान अर्थात् स्मरण करते २ विज्ञानदेव के पास पहुंचती हैं तब सारे जीव व्यवहार को क्षय कर मोक्ष पाता है। इतना कह चुप हो गया।

॥ ४० ॥ विष्णु भगवान् ॥

विष्णुभगवान् ने सभा में आकर क्या देखा कि बड़े २ महाशय, बड़े बड़े सज्जन सहित व्याख्यान वेद वेदान्त शास्त्र पुराण आदिक युक्तियों के साथ उपदेश दे रहे थे और पुरुष सुना करते थे। उसी समय विष्णुभगवान् बोले हे प्रिय आत्माओं सुनो बिना जाने कर्म्म स्वरुप के जो कर्म करता है सो कर्म का फल नहीं मिलता और किसी बुद्धिमान से जान लेना चाहिये, किस वर्ण किस आश्रम के किस समय किस स्थान पर किस सामग्री के साथ किस विधि से कर्म करना चाहिये। और बिना गुरुके बताए उपासना निष्फल होती है। जैसे एकराज में राजके इन्तजाम के लिये कारबारियों के जिम्मेवारी काम सपुर्द किया गया और हुकुम फरमाया गया कि जिसको जो काम दिया जाता है सो काम ठीक करके रखो नहीं तो काम बिगड़ने पर उचित दण्ड मिलेगा। और तुम लोगों को भोजन वस्त्र मिला करेगा। जैसे चार वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ-बाण-प्रस्थ सन्यास इन वर्णों के लिये और इन आश्रमों के लिये बिलग २ काम दिया गया है जो अपने वर्ण को और आश्रम के काम छोड़कर अन्य वर्ण अन्य आश्रम का काम करेगा तो उस मनुष्य को सजा देने के लिये मजिस्ट्रेट यमराजजी की जिम्मेवारी है वही सजा करेंगे। जितने बिमारियां ज्वर बाय,पीलही, घाव आदिक अनेक प्रकार की बिमारियां यमराज की सेना हैं और ग्रह लोग सेना के अफसर हैं।

जिन पापियों ने यमपुरी से बाहर देहधारी मनुष्य आदिक चौरासी लाख देहधारी के पाप भोगने के लिये महज़ुद पाप भोग रहे हैं और स्थूल देह की हिफाजत कर्ता, बिमारियों के रहने के लिये वात पित्त स्थान बना देते हैं। और स्थूल दे हके नाश करने के लिये काल मोकर्रर कफ जो। स्थूल को भक्षण करता है। और एक महाकाल है जो भोग से रहित निरिच्छा निरमन निर-हंकार जो रहता है वह सूक्ष्म शरीर को भक्षण करता है। इतना सुनकर एक जिज्ञासु पुरुष हाथ जोड़ प्रश्न किया, हे प्रभु काल कौन है और महाकाल कौन हैं सो कहिये। हे सज्जनो कर्म के फल मोताधिक जन्म पाता है कर्मके फल भोगकर फिर कर्म करता फिर भोगता फिर स्थूल शरीरसे भोग भोगता है और स्थूल देहके काल नाम भक्षण करता है। जो उचित भोगों के लिये चंचल और अनेक वस्तु पर चलायमान होता है सो चित्त भोगों से हट चैतन्यमें मिल अचिन्त्य, होजाय तो कारण नाम कामना एक शरीर है सो नाश होता है। और जब अपने आप सत् शास्त्र द्वारा जब वोध हो तो सूक्ष्म शरीरका आत्म वोधमें लय नाम भक्षण है सो आत्मा ही महाकाल है। जिसमें सब लय पाता है जिस के जन्म मरण का अन्त होता है। आत्मा ही परमात्मा है आत्मा ही ब्रह्म है आत्मा ही सर्व व्यापक है अन्तर्यामी सुखस्वरुप निर्विकार चैतन्य ब्रह्म है जिससे चित उत्पन्न होकर पंचभूत को उत्पन्न कर आशक्त हो अनेक भोग की कामनाकर अनेक वार दुःख पाता है जिसका जन्मका अन्त नहीं जब वही चित्त चेतन से फुरा है उसी

तरफ व्योहार से उलटकर उसी चेतन्य आत्मा सच्चिदानन्द में प्रवेश करता है, तब जन्म मरण का अन्त होता है। इतना कहकर अन्तर्ध्यान हो गये।

इतने ही में मन रूपी नटने वासना रूपी (नटी से) हे प्यारी देख ईश्वर की लीला बड़ी विचित्र है। जिसकी लीला और पराकर्मको कोई नहीं जान सकता। वाहः वाहः कैसे २ महाशय ने कैसी कैसी वार्ता पक्षपात से रहित और मत मतांतर से रहित कही है। धन्य हो! सच्चिदानन्द आप के प्रति बारंबार मेरा प्रणाम है! नटीके सहित आनन्द के शब्द कोबोलते और कल्याण को मनाते संसार रूपी नाटशाला का वर्णन कर अपना अपना वक्तव्य समाप्त किया

॥ ॐ शान्ति शान्ति शान्ति ओं तत् सत् ॥

इति वामन चतुर्वेदी कृत सत्यसंग्रहोपदेश तृतीय विश्राम समाप्त ।

(समाप्तमिदम्)